



पाषाण-युग

तीन लघु उपन्यास

- ज्वालामुखी के गर्भ में
- पाषाण-युग
- निष्कासन

पाषाण-युग

मालती जोशी



वाई-पपा को—

लिखने-पढ़ने का यह न

जिनसे विरासत में मि



पाषाण-युग





ज्वालामुखी के गर्म में



‘ए साहब बहादुर ! लोग-बाग आपको देखने के लिए नहीं आये हैं।’

अपनी कलमों को तरतीब में संवारते हुए हरि भैया दर्पण में मेरी परछाईं देखकर झेंप गये। फिर एकाएक बोल्ट बनने की कोशिश में मेरी ओर पलटकर बोले, ‘मैं जरा दूरदर्शिता से काम ले रहा था। हो सकता है, उन लोगों के साथ एकाध बहन, एकाध सहेली हो।’

‘जी नहीं, उन लोगों के साथ सिर्फ एक अदद मम्मी है।’ मैंने मुंह बिचकाकर कहा।

‘तो क्या वे लोग आ गये?’

‘और क्या। गाड़ी समय से पहले चल रही है। हमारी तो एकदम मुसीबत ही हो गयी।’

‘भैया तैयार हो गये?’

‘सो रहे हैं कुंभकर्ण महाराज। उन्हीं को जगाने के लिए तो आयी हूँ। और हा, मोती ने कहा है, ‘मिलन स्वीट्स’ के बड़ा ऑर्डर दे रखा है, जल्दी से मिठाई ले आओ। और देखो, पोछे से आना।’

पलटकर मैं देहरी तक ही जा पायी थी कि उन्होंने पुकारा, ‘ए मोती, सुन इधर!’

‘क्या है बाबा। हमे देर हो रही है।’

‘लड़की कौसी है?’

‘एकदम हेमा मालिनी है।’ मैंने कहा और भाग आयी। हेमा मालिनी

के नाम से ही हरि भैया का कलेजा धक्-धक् होने लगता है।

बड़े भैया आराम से सो रहे थे। चारखाने की लुंगी और वनियान पहने। सुबह ही नाइट पुलमन से पहुंचे थे। शेव भी नहीं बनाया था। खाना खाकर जो सोये थे, तो अब तक... अभी जो लड़कीवाले आकर देख जाएं तो दुवारा इस घर का रुख न करें।

मां और मौसी भी खूब हैं। कम-से-कम सुबह इन्हें संकेत तो दे देतीं। कोई घर से भाग तो नहीं जाते। उन्हें फंसाने में खुद फंस गयी हैं। अच्छा हुआ, ऐसा ही होना चाहिए।

‘भैया, उठिए, मां बुला रही हैं।’ मैंने उन्हें झकझोरते हुए कहा।

उन्होंने तुरंत ही आंखें खोल दीं। डॉक्टरों पढ़ने का यह एक अच्छा लाभ है। हरि भैया की तरह घंटों प्रभाती नहीं गाना पड़ती।

‘क्या है ? क्यों परेशान कर रही है ?’ उन्होंने अलसाये स्वर में पूछा।

‘मां बुला रही हैं।’

‘कह दे, आ रहा हूं।’ उन्होंने अंगड़ाई लेकर उठते हुए कहा।

‘जल्दी आना... और सुनिए, जरा ढंग से तैयार होकर आइएगा।’ मैंने रहस्यमय ढंग से कहा।

‘तैयार होकर आऊं ? क्यों ?’

‘नीचे लोग-वाग आए हैं।’

‘कौन लोग ?’

‘लड़कीवाले। पिछली बार आप आए थे, तो आपको फोटो दिखायी थी न मां ने। उज्जैनवाली ? इतनी सुंदर लड़की है। मां तो एकदम खुश हो गयी हैं। कह रही हैं—अगर दिन अच्छा होगा, तो आज ही शगुन भी कर देंगी।’

मैं उत्साह में कहे जा रही थी, पर देखा—सामनेवाले पर कोई अपेक्षित प्रतिक्रिया नहीं हो रही है। कंधी करते-करते उनका हाथ एकदम रुक गया था। माथे पर गहरी लकीरें खिंच आयी थीं। मैं चुप हो गयी।

‘लड़की के साथ कौन-कौन हैं ?’ उन्होंने धीरे से पूछा।

‘मां हैं, पिताजी हैं, भाई हैं। पूरा कवीला है।’

‘भाई को जरा ऊपर भेज दे मेरे पास।’

मैं असमंजस में वही खड़ी रही, तो खीजकर बोले, 'सुनाई नहीं दिया क्या ?'

'जी, अच्छा।' मैंने मुंह फुलाकर कहा और जीना उतरने लगी। सारा उत्साह फीका पड़ गया था।

हॉल में खनकती हुई हंसी के साथ संभाषण पूरे जीवन पर था। मौसी एक-दो बार उज्जैन हो आयी थी। लड़की के भाई, पिता भी घर देखने और मां से मिलने के बहाने एक-दो बार आ चुके थे। इसीलिए अपरिचय की कोई दीवार बीच में नहीं थी।

मैं एकदम सबके बीच में जाकर खड़ी हो गयी। लड़की के भाई की तरफ मुखातिब होकर बच्चों की तरफ ठुनकती आवाज में कहा, 'आपको भैया बुला रहे हैं। ऊपर कमरे में।'

क्षणभर को घातचीत जैसे जम गयी। मैं पिता की मौन सम्मति पाकर उठे और मैं गाडड की तरह साथ हो गयी।

ऊपर जाकर देखा, भैया वनलून और कमीज पहन चुके हैं। मुह पर पानी के छीटे देकर नींद भगाने का भी प्रयास किया गया है। बिखरे बाल भी भव तरतीब से संवारे हुए लग रहे थे।

दोनों ने अपना-अपना परिचय देते हुए गर्म-जोशी से हाथ मिलाया। भैया ज्यादा उत्साहित नहीं लगे। शायद सफर की थकान और नींद का बोझिलपन अब भी उन्हें छोड़ने को तैयार नहीं था।

'तू जा, मीता! मैं मि० पाठक को नीचे से आऊंगा।' भैया ने कहा। यह आदेश था, नरम स्वर में कहे जाने के बावजूद मैं उसे टाल नहीं सकी।

७

मि० पाठक ज्यादा देर ऊपर नहीं रुके। हॉल में लौटे, तो उनका चेहरा भारी था। सबकी आँखें उन पर टिक गयी।

'क्या बात है, ललित ?' पिता ने व्यग्रता से पूछा।

मि० पाठक ने एक बार अपनी और एक बार मेरी मा की ओर देखा। फिर सख्ती से होंठ भीचते हुए बोले, 'डॉ० मनीष चाहते हैं कि उनकी मां के सामने यह रहस्य न खोला जाए, मगर मेरी बला से ! पापा, इन महाशय का कहना है कि इनकी सगाई हो चुकी है।'

ज्वालामुखी के गर्भ में

या ?' कितने कंठों ने एक साथ प्रश्न किया ।

मनीष ?' मां किस दुरी तरह से चीखीं ।

क्या है, मां ?' भैया ने कमरे में आते हुए शांत स्वर में पूछा ।

ये... ये ललित भाई क्या कह रहे हैं ?'

'ठीक कह रहे हैं ।'

'किस लड़की से शादी कर रहा है तू ?'

'यह सब चर्चा बाद में भी हो सकती है, मां !' भैया ने उसी शांत स्वर कहा और फिर मेहमानों से माफी मांगते हुए कहा, 'मुझे बहुत-बहुत

कसोस है, इन लोगों ने अगर जरा भी संकेत दिया होता तो शायद...'

'ओह, जरा इन्हें संभालिए ।' कहते हुए वयोवृद्ध मेहमान एकदम उठ डे हुए थे । हम सबने चकित होकर देखा, मां वेहोश होकर कुर्सी पर ही

गुड़क गयी थीं । मैं तो चीखकर उनसे लिपट जाने को हुई, पर भैया ने तख्ती से मुझे दूर खड़ा कर दिया । उस समय उनका चेहरा ऐसा लग रहा था, जैसे पत्थर में तराशा गया हो । अपनी मजबूत बांहों में मां का दुर्बल शरीर समेटते हुए उन्होंने भीतर जाते हुए इतना ही कहा, 'मौसी ! मेरे साथ आना ज़रा ।'

पीछे-पीछे जाने की इच्छा को बहुत मुश्किल से रोक पायी मैं । वहीं सोफे पर बैठकर दोनों हाथों में मुंह छिपाकर सिसकने लगी । मिसेज़ पाठक मेरा सिर सहलाती रहीं । अजीब असमंजस की स्थिति थी । एकाएक ललित ने कहा, 'हम अब चलें, पापा !'

'ना बेटे, ऐसे अच्छा नहीं लगता । वहनजी की हालत ज़रा ठीक होने.....' ०

'तो आप रुकिए ! मैं जा रहा हूं ।'

'ठहरो, दादा ! मैं भी आपके साथ चलूंगी ।'

उस दर्प भरे स्वर से चौंककर मैंने सिर उठाया । कमरे में उस सजी-धजी मूर्ति का अस्तित्व ही मैं भूल गयी थी । लेकिन क्या यह वही चेहरा था, जो कुछ समय पहले तक शर्मीली मुसकान से दमक रहा था ! भैया का चेहरा अगर काले संगमरमर में बदल गया था, तो यह तो पूरी-की-पूरी प्रतिमा वर्क हो गयी थी ।

‘अरे, ये लोग जा रहे हैं। अंदर चाय लग गयी है न !’

खुशबू का एक भभका आया और लजीली मुसकराहट लिये हरि भैया कमरे में दाखिल हुए। एक क्षण को अनचाहे सबकी निगाहें उन पर टिक गयी। गोरे-चिट्टे हरि भैया नेवी ब्लू पैट और फ्रीम कलर की मनीला पहने सचमुच बड़े प्यारे लग रहे थे। उन्होंने अपनी सजावट पर काफी समय खर्च किया था। टाई पिन से लेकर जूतों तक सब कुछ लकड़क कर रहा था। सबको अपनी ओर घूरते देखा तो वे कुछ सचेत हो गये।

‘और लोग कहा है ? चाय बिलकुल तैयार है।’

येचारे हरि भैया ! इतना तरस आया उन पर। दीन-दुनिया से घेलबर वे चाय की मेज ही सजाते रह गये थे।

‘आपकी तारीफ !’ ललित के पिताजी ने पूछा।

‘ये हरि भैया हैं।’ मैं बच्चों की तरह इतना ही कह पायी।

‘पढ़ते हैं ?’

‘जी हा। बी० कॉम० फाइनल में हूँ।’ उन्होंने लजीले अंदाज में कहा।

ललित और सुलक्षणा इस बीच कब चले गये, पता ही नहीं चला।

कुछ देर बाद तौलिये से माथे का पसीना पोछते हुए भैया बाहर आये।

‘अब वे कैसी हैं ?’ मि० पाठक ने व्यग्रता के साथ पूछा।

‘अब अच्छी हैं। थैंक गॉड !’

‘क्या ऐसा अकसर होता है ?’ मिसेज पाठक ने पूछा।

‘जी, पहले अकसर होता था। दरअसल मेरे पिताजी और मुझसे छोटी एक बहन, एक साथ एक एक्सीडेंट में चल बसे थे। उस हादसे ने मा का मन बहुत तोड़ दिया है। किसी भी आघात को सह नहीं पाती। मुझे अफसोस है, सब मेरी बजह से हुआ।’

‘कोई बात नहीं।’ मि० पाठक ने उनकी पीठ को थपथपाते हुए कहा।

‘आप लोगों को मेरी बजह से इतनी परेशानी उठानी पड़ी, मैं अपनी शर्मिंदगी का वधान नहीं कर सकता।’ भैया ने भरपि कंठ से कहा।

‘नहीं, इसमें तुम्हारी कोई गलती नहीं थी।’ मि० पाठक ने सात्वना के स्वर में कहा। मुझे वे पति-पत्नी सज्जनता की प्रतिमूर्ति लगे।



आत्मग्लानि से उबरकर अब भैया ने सिर ऊपर उठाया, 'अरे हरि, मुम कहां थे अभी तक ? जज साहब, यह मेरा छोटा भाई हरीश है ।'

'हां, अभी नमिताजी ने परिचय कराया था ।'

'भैया, चाय यहीं मंगायी जाए, या...' हरि भैया कहते-कहते रुक गये । असंग का गांभीर्य अब भी उनकी समझ में नहीं आया था । और सबके सामने उन्हें समझाया भी नहीं जा सकता था । पर शायद वातावरण के तनाव को वे कुछ-कुछ अनुभव कर रहे थे ।

'एक-एक कप चाय भी हम आपको न पिला सके, तो हमें बहुत दुःख होगा । मुझे उम्मीद है, आप ना नहीं करेंगे ।'

भैया इतने विनम्र हो सकते हैं, यह मेरी कल्पना से भी परे था । शायद वे अब भी अपने आपको क्षमा नहीं कर पा रहे थे । उनके अनुरोध को पाठक दंपति टाल नहीं सके ।

मेज दुल्हन की तरह सजी हुई थी । सबने निःशब्द चाय के घूंट भरे और उठ खड़े हुए । भैया, मैं और हरि भैया गाड़ी तक उन लोगों को छोड़ने गये । मौसी मां की सुश्रूषा का वहाना लिये कमरे में ही बैठी रहीं ।

गहमागहमी में बीता हुआ दिन शाम को यूँ चुपचाप उदास होकर लौट गया था ।

'मां, मुझे कुछ कहना है ।'

मां के तलुओं में घी की मालिश करते हुए मैंने सिर उठाकर देखा, भैया छाती पर दोनों हाथ बांधे विवेकानंद की मुद्रा में खड़े थे । मां ने कुछ जवाब नहीं दिया और मुंह फेरकर लेट रहीं । इतना रोष हो आया मां पर । पिछले दो दिनों से उन्होंने भैया से एक बार भी बात नहीं की थी । बेचारे चुपचाप उनकी सुश्रूषा करते रहे थे । इन दिनों उनका चेहरा इतना करुण लगता था कि दया हो आती थी ।

'मैं सोचता हूँ मां, अब तुम्हारी तबीयत इस लायक हो गयी है कि मेरी बात सुन सको, सह सको । वैसे भी मेरे पास अब समय नहीं है । सुबह की बस से मुझे चले जाना है ।'

भैया ने कहा और दरवाजा बंद करके कुर्सी पर बैठ गये । कुछ क्षण

तब वे कलाई-घड़ी को गोल-गोल घुमाते रहे, शायद अपनी बात ठीक से कह पाने का साहस मंजो रहे थे। पर मां ने उन्हें भीका ही नहीं दिया। बोली, 'भीता, दरवाजा खोल दे, मेरा दम घुट रहा है।'

मैं उठने लगी, तो भैया ने हाथ पकड़कर मुझे रोक दिया, 'दरवाजा मैंने जान-बूझकर बंद किया है, भीता। इस घर में प्रायवेसी नाम को नहीं थी। आशा रह गयी है। दो दिन में छटपटा रहा हूँ, पर इतने सारे लोगों के बीच मैं अपने मन की बात नहीं कह सकता।'

'उम दिन कह तो चुका था मन की। क्या अब भी कोई कतर बाकी है?' मां एकदम उठ बैठी। उत्तेजना से उनकी माथे की नसें फड़कने लगी थी।

'उस दिन कहाँ कुछ कह पाया था! तुम सुनने की स्थिति में ही नहीं थीं। आशा थी कि तुम स्वयं पूछोगी कि मैं यूँ एकाएक कैसे चला आया हूँ। सोच रहा था कि शादी की बात सुनकर तुम्हें कुछ तो उरमुक्ता होगी। पर लगता है, तुम्हें अपने यच्चों में उतनी भी दिलचस्पी नहीं रह गयी है।'

'दिलचस्पी नहीं होनी, तो तेरे लिए दुनिया-जहान की लड़कियाँ देखती फिरती हैं? चार भले आदमियों के सामने मेरा अच्छा तमाशा बनाया तूने।'

और माँ ऐसे कांपने लगी, जैसे जूड़ी चढ़ आयी हो।

'भैया, प्लीज! अभी ये सब बातें रहने दो। माँ की हालत देख रहे हो न!'

'देख रहा हूँ, बरसों से देख रहा ■। अपनी बड़ी-से-बड़ी समस्या को मंझघार में छोड़कर, पहले दोड़कर इन्हीं को देखना पड़ा है, इन्हीं को संभालना पड़ा है। मारी जिदगी यही करता आ रहा हूँ। तभी तो पचीस साल की उम्र में एकदम बूढ़ा गया हूँ।'

माँ का हिलता हुआ शरीर एकदम काठ की तरह स्थिर और निस्पंद हो गया था। वे फटी-फटी आँखों से भैया को देखने लगी थी। पर वे एक क्षण को भी बहा नहीं सके।

माँ देर रात तक तकिये में मुह छिपाये सुवकती रही। मोसी ने तरह-तरह से मुझसे तर्क-वितर्क किये, पर मैंने कुछ नहीं बताया। और बताने के

लिए था भी क्या !

सुबह भैया बस के लिए घर से निकले, उस समय मां सो रही थीं। काफ़ी रात गये वे सो पायी थीं, इसी से उन्हें जगाया नहीं गया था।

जाते हुए कमरे में चुपचाप बुलाकर उन्होंने मुझे एक लिफाफा पकड़ाया था। 'रात देर तक सो नहीं सका था। काफ़ी बातें इकट्ठा हो गयी थीं मन में। तू पढ़कर फाड़ देना, शायद तेरे रांदूक में भी यह सुरक्षित न रहे...' और यह है तेरी भाभी की फोटो।'

मैंने झपटकर फोटो उठा ली थी। एक भरा-भरा चेहरा और दो हंसती हुई आंखें। मौसी की व्यूटी-परेड में खड़ी होतीं, तो शायद फेल हो जातीं, पर कुल मिलाकर मुझे अच्छी लगतीं।

'कितनी स्वीट हैं न ! क्या नाम है, भैया?'

'बेला।'

'ओ लवली !'

'ये लोग पंजाबी क्रिश्चियन्स हैं।'

भैया की इस घोषणा से मेरी खुशी वहीं जम गयी।

'क्यों ? बुरा लगा सुनकर ?'

'अपने लिए नहीं। मैं मां के लिए सोच रही थी।'

'मुझे मालूम था, मां नाराज होंगी। मैं अपने को उस विस्फोट के लिए तैयार करके आया था। लेकिन बिना कुछ जाने उन्होंने जो उपेक्षा बरती है, वह बहुत तकलीफदेह है।'

'भैया, रिवशा ले आया हूं। चल रहे हैं न ?'

हरि भैया कमरे में आये और भैया ने चेहरे पर फैलती उदासी की चादर को एकदम समेट लिया। दोनों भाई एक-दूसरे के कंधों पर झूलते हुए स्कूटर की ओर चले गये। मैं डबडबायी आंखों से उस ओर देखती रही। भैया पिछले छह सालों से बाहर थे। मेडिकल उन्होंने ग्वालियर से ही किया था और वहीं अब हाउस जॉब भी कर रहे थे। पर कभी उनके जाने का इतना दुःख नहीं हुआ। इस बार पता नहीं क्यों ऐसे लगा, जैसे वे हमेशा के लिए जा रहे हों।

मौसी की पैनी दृष्टि सारे घर को नापे रहती है। भैया के जाते ही बोलों, 'आज तो बड़ी प्राइवेट बातें हो रही थी। क्या कह रहा था मनीष ?'

'भाभी की फोटो दिखा रहे थे।' मैंने तुनककर कहा।

भैया ठीक ही कह रहे थे, इस घर में जरा प्रायवेसी नहीं है।

'कहां है फोटो, दिखाना जरा ? इतना घुन्ना लडका है ! दो दिनों में मैंने बीस बार पूछा होगा, पर मुझे जरा सुराग नहीं दिया उसने।'।

'मेरे कमरे में आकर देख लेना फोटो।' मैंने कहा और अपने कमरे में चली आयी। मेज पर शिव-पार्वती का एक फोटो था। वह चंदन के फ्रेम में मेरे लिए सुपर्णा मंसूर से लायी थी। मैंने उसी में वह फोटो सजा दिया। लडकी बहुत सुन्दर नहीं थी, उसके फिशियन होने की बात सुनकर दुःख भी हुआ था, पर मन-ही-मन एक निर्णय ले लिया था कि मुझे भैया का साथ देना है, उनका बचाव करना है। इसी निश्चय के बल पर मैं घर में उठते सूफान का सामना कर सकी, सहेलियों के बीच गर्वोन्त होकर इस अंतर्जातीय विवाह की सूचना दे सकी।

माँ की प्रतिभियां तो अपेक्षित ही थी। वे दिनभर बेहोश होती रही, लेकिन मौसी बहुत ही जल्दी समझ गयी और मा को साह्वना भी देने लगी। उनकी आलोचना का तीखापन परिचित था, पर उनकी यह समझ-दारी...लगा, जैसे भीतर-ही-भीतर वे भैया के इस विवाह से प्रसन्न हैं। कौन जाने ?

दिनभर उधेड़बुन में पद्म को हाथ भी नहीं लगा पायी। मौसी के देख लेने का अंदेशा बराबर बना रहना। रात को मा के सो जाने के बाद ही खोल सकी।

पद्म क्या था, यादों का एक लम्बा सिलसिला। नैरोवी के सुहावने दिनों की ढेरों स्मृतियां थी। नैरोवी जहां पापा थे, सुनीता दोदी थी, सुख था, संपन्नता थी, ठहाके थे, किलकारियां थी। यहां आने के बाद वे सारी स्मृतियां मुहरबन्द करके रख दी गयी थी; क्योंकि उनसे मा को तकलीफ होती थी। पता नहीं, किस संजीवनी से भैया ने उन्हें अपने मन के भीतर यों तरो-ताजा रखा हुआ था। मैं तो सब भूलभाल गयी थी। दस साल पुरानी बातें थी। एक सात-आठ साल की लडकी याद भी क्या रख

पाती।

भैया ने लिखा था—मां का दुःख बहुत बढ़ा था, मैं मानता हूँ। पर अपने शोक से उबरकर उन्होंने क्षणभर को तो हम बच्चों का खयाल किया होता। जिन्हें काल यूँ निर्ममता से छीन ले गया था, वे क्या सिर्फ उनके पति थे, हमारे पिता नहीं थे? सुनीता क्या हमारी कोई नहीं थी? क्या हमारी उम्र मृत्यु को अंतिम सत्य के रूप में स्वीकार करने की थी?

चाहिए तो था कि मां अपनी ममता का आंचल कुछ और फैलाकर पापा का भी स्थान ले लेतीं, पर वे तो मां भी नहीं रह पायीं। इस पराये देश में, पराये घर में, पराये हाथों में हमें छोड़कर निश्चित हो गयीं। 'पराया' शब्द शायद तुम्हें ठीक न लगे। मौता, मौसी लाख उनकी बहन थीं, पर हम उन्हें कितना जानते थे!

हर बार, हर काम के लिए उनका मुँह जोहना मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। फीस के लिए, कपड़ों के लिए, किताबों के लिए उनके आगे हाथ फैलाते हुए मेरी आत्मा को कण्ट होता था। उन्होंने कभी किसी चीज़ के लिए मना नहीं किया, क्योंकि जो पैसा खर्च हो रहा था, वह हमारा था; फिर भी मेरा संकोच कभी नहीं टूटा। मां किसी चीज़ के लिए झिड़क भी देतीं, तो मुझे इतना दुःख नहीं होता। इस सिर-दर्द से बचने के लिए ही मैंने ग्वालियर में दाखिला लिया था। रोज़-रोज़ अपने स्वाभिमान की हत्या मैं नहीं कर पाता था।

मौसी ने हम लोगों के लिए बहुत किया है। मेरी परीक्षा के दिनों में वे रात-रातभर मेरे लिए चाय बनाती रही हैं। सुबह-सवेरे अलार्म लगाकर मुझे जगाती रही हैं। मेरे लिए उन्होंने स्वेटर बुने हैं, पिकनिक के लिए खाना बनाकर दिया है, मेरी बीमारी में दिन-रात मेरी सेवा की है। पर उनकी इस ममता के भीतर ईर्ष्या की एक हल्की-सी पर्त है। उसे मैं वर्दाशत नहीं कर पाता। कई बार इच्छा होती है कि अपनी सारी अच्छाइयाँ किसी जादू के जोर से हरि को दे डालूँ। तभी शायद इस संत्रास से मुक्ति मिले।

इसके बाद भैया ने बेला से अपने परिचय की कहानी लिखी और अंत में लिखा था—वह घर नहीं है, ज्वालामुखी है। किसी दिन तुम भी

उस गर्भगृह के बाहर आने के लिए छटपटाओगी, मीता ! तब मुझे खबर करना । जहाँ भी रुँगा, दोड़ा आऊँगा ।

पत्र का कई-कई बार पारायण करके मैंने उसे अपने ट्रंक में छिपाकर रख दिया । सोच लिया था कि किसी दिन माँ को जरूर दिखाऊँगी । भैया के मन की अंधेरी गुफाओं में एक बार उन्हें फेरी लगानी ही होगी, नहीं तो माँ किसलिए बनी थी ।

भैया के पत्र का अंतिम वाक्य मैंने मन के कागज पर अंकित कर लिया था । मेरे लिए वह दीप-स्तंभ हो गया था ।

मैं और हरि भैया निश्चय कर चुके थे कि घरवानों के विरोध की ताक पर रखकर भैया के विवाह में अवश्य भाग लेंगे । पर उन्होंने हमारे इस निश्चय पर पानी फेर दिया । इस बार भी उन्होंने विवेक का पल्ला नहीं छोड़ा था । शादी की सूचना तब मिली, जब आठ दिन ऊपर हो चुके थे । सूचना क्या थी, अच्छा-खासा पार्सल था । मेरे और हरि भैया के लिए दो कलाई घड़ियाँ थी—एच० एम० टी० की, जिनके पीछे लिखा था—‘माँ की ओर से’ ।

और साथ दर्जन भर लड़कियों की तसवीरें थी, जो समय-समय पर यहाँ से भेजी गयी थीं । भैया की सख्त हिदायत थी कि वे सारी तसवीरें सही पत्तों पर वापस भेज दी जाएँ ।

माँ और मौसी को अब इन कामों में कोई रस नहीं रह गया था इसलिए यह दिलचस्प काम हमी लोगों के सिर पर आ पड़ा । एक मुबह चाय की मेज पर ही हमने इस वापसी-अभियान का शुभारंभ कर दिया । डायनिंग टेबल का काला टॉन किमी अल्बम की तरह लग रहा था । हरि भैया बिखरे हुए फोटो में से एक-एक चुनकर नाम और पते मिलाते जाते, मैं लिफाफों पर बड़े-बड़े अक्षरों में उन्हें लिखती जा रही थी ।

आखिरी लिफाफे को सीलबंद करते हुए हरि भैया बोले, ‘और दो-एक साल बाद हमारी मीता की फोटो भी इसी तरह जगह-जगह भेजी जायेगी ।’

‘और इसी तरह लौटायी जायेगी ।’ मैंने उनका वाक्य पूरा करते हुए

वहा ।

‘लौटा कर तो देखे कोई, तबीयत दुरुस्त कर दूंगा !’ और उन्होंने एक काल्पनिक मुक्का हवा में उछाल दिया ।

‘अरे बाह, कोई जबरदस्ती है । मान लो, तुम्हारे पास कोई दस-वीस फोटो आ गये, तो क्या सबसे शादी करोगे ?’

‘शादी तो खैर एक से ही करूंगा, पर तसवीरें सब संभालकर रखूंगा । वीवी ने जरा अकड़ दिखायी कि अपना अल्बम दिखाकर कहूंगा कि देवी देखो, श्रीमान हरिप्रसन्न शर्मा की अर्द्धांगिनी बनने के लिए कितनी बालिकाएं लालायित थीं ।’

‘तब तो और भी उसके पांव जमीन पर नहीं पड़ेंगे कि इतनी सारी लड़कियों में से उसे चुना गया है ।’

‘वाई री ! क्यों मन के लड्डू फोड़ रही हो । साबुत हाथ-पांव की एक ही मिल जाए, तो भाग समझना । दस-वीस तो क्या आयेंगी अपने दरवज्जे ।’ मौसी की बात से हमारी हंसी मुंह में ही जम गयी ।

मां भी नाराज हो गयीं । बोलीं, ‘छोटी, तू जब करेगी, उल्टी बात करेगी । कोई मेरा लाल लंगड़ा-लूला है, जो लड़की नहीं मिलेगी ?’ और उन्होंने हरि भैया के गोरे गुवरले चेहरे की बलाएं ले लीं ।

‘लंगड़े-लूले की क्या शादी नहीं होती, जिज्जी । शादी होना और बात है, और अच्छे खानदान से रिश्ता होना और बात । लड़कीवाले घर देखते हैं, घराना देखते हैं । कोई हमारे मां-बाप की तरह लड़की को धूरे पर नहीं फेंक देता ।’

‘त्वमेव केवलं हर्तासि, त्वमेव केवलं घर्तासि, त्वं सर्वं खविदम ब्रह्मासि ।’ पूजाघर से मौसाजी का गुरु-गंभीर स्वर कुछ ऊंचा ही आने लगा था । गणपति अथर्व शीर्ष का ओट लेकर वे मौसी के वाग्वाणों से वचना चाहते थे । उनकी यह जानी-पहचानी आदत थी । पर कितना वच पाते थे, वे ही जानें !

टेबल पर सारा सामान यूं ही बिखरा छोड़कर हरि भैया उठकर चल दिये थे ।

मां कह रही थीं, ‘पैसे से ही क्या सब सुख मिल जाते हैं । छोटी, मुझे

देल, कितना दुःख छाती में छिपाये बैठी हू। पति तो भाग्य ने छीन लिया, बैठे को पता नहीं कौन कहां की लड़की मोह कर ले गयी। अब इस पर को, घराने को ओढ़ू कि बिछाऊं। तेरे साथ तो तेरा सब-कुछ है। उगकी बदौलत तू सिर उठाकर तो चल सकती है, फिर क्यों उस देवता भादगी की आत्मा जलाती है ?'

'मेरी आत्मा जलेगी, तो मुंह पर बात आयेगी ही। राजकुमार-गा मेरा लड़का किमी सायक नहीं बन सका। मोग-शाग वत ठाण्डरभी के आगे घंटी भर बजाना जानते हैं।'

इतनी चीज ! इतनी ऊब हो आयी मुझे। पता नहीं, इन लोगों वहाँ की अपने दुःखों में इतना मगाव क्यों है ? खुद भी रोयेंगी, साथवाले की जिदगी भी जहर करके रख देंगी।

पूजाघर में अब विष्णुमहत्प्रनाम गुनार्द वै रहा था।

'हरि भैया, चलिए, 'घर-घर की कहानी' देग आएँ। बीणा कह रही थी, खूब अच्छी पियर है।' मैंने आधी की तरह उनके कमरे में प्रवेश करने हुए कहा।

'अपने घर की कहानी ने तो क्या अच्छी होगी।' वे गूलक में आये गढ़ाये ही विषम स्वर में बोले।

'बेकार की किनारों की तो मन झाड़िए, चलिए न ! सीटों हुए कविता के यहां होते आयेंगे। मुझे अपनी कॉपियाँ मनी हैं।'

मेरी सहेलियों के नाम से जिन दृष्टिकोणों उनका चेहरा धँसा ही सकल बना रहा। वे पूर्ववत् पृथक् के पन्ने पलटने रहे।

'चलिए भी। हमारे साथ कोई नहीं है, इसी में इतनी मुशामद कर रहे हैं। आर माद्व, जगदा ही स्कोर बन रहे हैं।' और मैंने गूलक छीनकर परे फेंक दी।

'मैं कोई नुस्खा बर्दादाई हूँ, जो हर जगह मुझारे साथ बिगड़ना दिवंगा। प्यार, मेरे कमरे में दया हो जाओ।'

वे बोले ! यह चेहरा ! यह आदर ! चलिए तो या कि कोई मे भंग तन-दहन दल उठाओ, पर विमल और दृष्ट में भगवान में उठी-पड़ी छापीं



से उन्हें निहारती रह गयी। पाँव मन-मन भर के होकर वहीं जम गये। किसी तरह अपन को ठेलकर मैं दरवाजे तक ले तो गयी, पर उतनी देर बाद उस जाने में कोई प्रतिष्ठा नहीं रह गयी थी।

‘सॉरी, मीता !’

मैं अनचाहे ही ठिठककर रह गयी।

‘मुझे बहुत अफसोस है, मीता। इस तरह तुम्हें जलील करने का मुझे कोई हक नहीं था। इस कमरे पर मेरा अधिकार ही क्या है। यह कमरा, यह घर... ये सब तुम्हारा ही तो है। हम तो केवल... क्या हैं हम लोग, यही समझ नहीं आता। नौकरों की भी अपनी कुछ औकात होती है। लेकिन हम तो सिर्फ ... पैरासाइट्स हैं।’

सॉरी होना क्या इसे ही कहते हैं ?

उसके बाद वहाँ रुकना संभव ही नहीं था। सीधे अपने कमरे में आकर विस्तर में पड़ रही। दुःख, अपमान, रोष, ममता—सब-का-सब सिमट आया था मन में।

तीन-चार साल पुराना एक प्रसंग याद आ गया। हरि भैया का हायर सेकंडरी का परिणाम आया था। बेचारे जनता क्लास में पास हुए थे। मां कह-कहकर हार गयीं, पर मौसी ने सवा रुपये के लड्डू भी नहीं बाँटे। दो साल पहले ही मनीष भैया के पास होने पर मिठाई, पार्टी और बधाई-पत्रों की कितनी घूमधाम लगी रही थी। भैया मेरिट लिस्ट में चौथे नंबर पर आये थे। उसके मुकाबले में हरि भैया का परिणाम सचमुच फीका था, पर मौसी के वाग्वाणों ने तो उसे करुण बना दिया था। आखिर मां ने ही डांटा था, ‘चुप कर, छोटी। तेरी बातों से तंग आकर लड़का कहीं नदी-कुआं कर बैठेगा, तो जिंदगी भर को रोती रहेगी।’

तब कहीं मौसी का अनवरत भाषण समाप्त हुआ था।

शाम की आरती के बाद मौसाजी ने मुझे पूजाघर में बुलाकर मेरे हाथ पर दो पेड़े रखे थे, ‘ये मेरे बेटे के पास होने की मिठाई है, बिटिया। गरीब आदमी हूँ न ! ज्यादा जश्न तो नहीं मना सकता।’

सातवीं-आठवीं क्लास की वेवकूफ-सी लड़की थी मैं। उनकी बात को

मतलब नहीं समझ सकी। पर उनकी आँखों की पीड़ा, उनके स्वर का वास्तव्य मुझसे छिपा नहीं रहा।

वह थोड़ी-थी मिठाई लिये मैं प्रतीक्षा में बैठी रही। बहुत गत गये लोटे थे हरि भैया। आकर छत पर अपने विस्तर पर चुपचाप लेट गये थे। मैंने दवे पांव जाकर पेड़ा उनके मुह में ठूस दिया था।

‘क्या है यह?’ वे हड़बड़ाकर उठ बैठे थे।

‘मिठाई है।’

‘किस बान की मिठाई?’ उन्होंने भारी हुई आवाज में पूछा।

‘एक हमारे हरि भैया हैं, उनके पास होने की।’ मैंने गरारन से आँखें नचाकर कहा।

कुछ क्षण वे चुप रहे, फिर बोले, ‘किसने बाटी है?’

‘मौसी ने।’

‘मेरे सिर पर हाथ रखकर कहो।’

कैसे कहनी! चुप होकर रह गयी।

‘बाबूजी ने अपने टाकुरजी को भोग लगाया होगा। ठीक है न! अपने नालायक बेटे के पास होने की खुशी सिर्फ वे ही मना सकते हैं।’

और फिर एकाएक उनका चेहरा तमतमा उठा था, ‘क्यों आये थे तुम लोग यहाँ! क्या उतने बड़े अफ्रीका में तुम लोगों के लिए जगह नहीं थी! आते ही तुम लोगों ने मेरा घर, मेरी मा, मेरा मुख—मव-कुछ छीन लिया...छोटा-सा घर था हमारा। पर उस घर में मैं राजकुमारों की तरह पलता था। उस समय मेरी हर इच्छा पर अम्मा विछ-विछ जाती थी। उस समय मैं उनको आँखों का तारा हुआ करता था...और अब, अब दुनिया में बस एक ही नाम रह गया है, मनीष-मनीष-मनीष।’

और पलंग की पाटी पर सिर रखकर वे सिसक-सिसककर रो पड़े थे।

छोटी थी मैं उस समय, पर नारी की सहज ममता ने उम्र का व्यवधान कब माना है। उनके आँसू सोख लिये थे मैंने, उनका दर्द वाट लिया था। तब से उनकी हर व्यथा को अपने संपूर्ण मवेदन के साथ जीने की जैसे मेरी आदत हो गयी थी। अधिकार हो गया था।

और इस अनाम रिश्ते की पृष्ठभूमि पर आज उनका यह व्यंग्य कैसी कर गया था ! भीतर तक तिलमिला उठी थी मैं ।

सरे पहर मैं अपनी बुनाई लेकर छत पर बैठी हुई थी । हरि भैया पास आकर ऐसे बैठ गये, जैसे कुछ हुआ ही न हो । मैं भी जान-बूझकर दोनों के उलटफेर में उलझी रही ।

‘मीता !’

‘हूँ ।’

‘मेडिनी तो अब शायद नहीं मिलेगा । फर्स्ट शो में चलोगी ?’

‘नहीं, रहने दो ।’

‘यानी कि नाराज हो गयी, यही न । ठीक तो है, इस घर में हर एक को नाराज होने का अधिकार है, सिवाय मेरे ।’

‘नाराज होने की बात नहीं है, हरि भैया ! बस, मूड नहीं रहा ।’ मैंने कुछ तल्खी के साथ कहा । वे चुप हो गये ।

फिर कुछ देर बाद बोले, ‘अच्छा चलो, नेहरू पार्क चलते हैं । वहां से लौटते हुए किशन के यहां चलेंगे । उसकी मां तुम्हें बहुत याद करती हैं ।’

‘आज रहने दो ।’

‘अच्छा तो तुम्हारी कविता के यहां चले चलते हैं । या फिर वह कौन है अपर्णा-सुपर्णा, उसके यहां हो आते हैं ।’

‘कहा तो भई कि मुझे कहीं नहीं जाना है ।’ मैंने खीजकर कहा । वे फिर चुप हो गये और इस बार उनके चेहरे पर एक अजीब-सी असहायता उतर आयी । मेरे रूठ जाने का दुःख उन्हें साल रहा था । परंतु मुझे मनाने का कोई उपाय भी वे खोज नहीं पा रहे थे । उनकी उदास डवडवायी आंखों को मैं अधिक देर तक नहीं सह पायी । अपने स्वर को यथाशक्ति नरम बनाकर मैंने कहा, ‘सच कहूं हरि दा, आजकल किसी के घर जाने की इच्छा ही नहीं होती । कहीं भी जाती हूं, तो तुलना में अपना घर उभरकर सामने आ जाता है । सोचती हूं, इतने अभाव में, दुःख में भी ये लोग खुश कैसे रह लेते हैं ! दुनिया भर की मनहूसियत हमारे ही यहां क्यों है । कविता की मां छह महीने से खाट पर पड़ी है । सुपण

वा इतना बड़ा परिवार इतनी-सी आय के महारे चल रहा है। तुम्हारे किशन के यहां तीन-तीन अनव्याही बहनें बैठी हुई हैं, फिर भी इन लोगों के महा कुछ ऐसा है, जो मन को बाध नेता है। जाती हूं, तो लौटने की इच्छा ही नहीं होती। और यहां तो हरदम भाग जाने का मन होता है।'

'इनमें आश्चर्य की क्या बात है। यह कोई रहने की जगह थोड़े ही है। यह तो कब्रिस्तान है। यहां आदमी नहीं रहते, उनकी छाया रहती है। अपने-आपको दफना कर उन पर पत्थरों की तरह जड़ी हुई ये छाया भर हैं।'

'छि., क्या नवकवियों जैसी उपमाएं दे रहे हों। क्या इससे अच्छी कोई बात तुम्हारे दिमाग नहीं में आती।'

मैं कॉमर्स का विद्यार्थी, उपमा-उत्प्रेक्षा क्या जानू! जैसा सोचता हूं, कह डाला। और तुम जानती हो मीता, कब्रिस्तान में भी कभी-कभी कोई प्यारा-मा पेड़ उग आता है। अपने सिर पर ढेर सारे पुशबूदार फूलों का मुकुट धारण किये हुए यह अनोखा पेड़ वातावरण की उदासी को सुगंध में भिगाता रहता है। इस पेड़ का नाम जानती हो?'

मैंने प्रश्नार्थक दृष्टि से उन्हें देखा। उनकी आंखों में उस फूल का नाम पड़ लिया मैंने।

इसके बाद भी रुठे रहना क्या संभव था।

'मीता!' थोड़ी देर बाद वे बोले, 'तुम्हें वह जूनी कसेरा बाखलवाला हमारा घर याद है?'

'नहीं तो।'

'कभी-कभी वह घर बहुत याद आता है। उस घर के साथ कितना कुछ छूट गया है... तुम्हें याद है मीतू, तुम सोम आये थे न तब, तुम दिन भर वहां करती थी—यह घर गंदा है, हमें यहां नहीं रहना।'

'मैं बहुत छोटी थी न उस समय।' मैंने अपराधी स्वर में कहा।

'हां, तुम बहुत छोटी थी, इसीलिए मन की बात कह सकी। जो बान मनीष नैया और मौसी अनुभव करके रह जाते थे, वह तुम घंझिझक कह डालती थी। धीरे-धीरे सबको लगने लगा कि वह घर छोटा है, गंदा है। अम्मा को भी... और तब से इस मनहूस कोठी से बंध गये हैं हम।'

‘यह घर क्या शुरू से ही ऐसा मनहूस लगता रहा होगा !’ मैंने विस्मय में भरकर कहा ।

‘क्या पता ! तब इतना समझने की अवल कहां थी ! इतना याद है, बाबूजी यहां नहीं आना चाहते थे । सालभर तक वे पुराने मकान का किराया भरते रहे...पर अंत में उन्हें भी हथियार डाल देने पड़े । वे मुझसे अलग होकर नहीं रह सकते थे, मैं अम्मा के बिना नहीं रह पाता था । और अम्मा ! उनके लिए इतना बड़ा घर, इतने सारे नौकर, इतना ऐश्वर्य, इतनी हकूमत छोड़ना बहुत कठिन हो गया था । वैभव की इस दौड़ में मैं और बाबूजी कब पीछे छूट गये, पता ही नहीं चला । बाबूजी के पास तो फिर भी उनके ठाकुरजी हैं, लेकिन मैं क्या करूं ! अपने निष्प्रयोजन जीवन का क्या करूं ?’

‘तुम्हें क्या हो गया है आज ! कैसी ऊटपटांग बातें कर रहे हो जब से ।’

‘मां की नजरों में जो वेटा घूरे से भी गया-बीता हो गया हो, उससे अच्छी बातों की तो अपेक्षा नहीं की जा सकती ।’

ओह, अब समझी । सुबह वाली बात फांस की तरह चुभ रही है मन में अब तक ।

मैंने अपने स्वर में ढेर-सी ममता उंडेलकर कहा, ‘मांसी की बातों का बुरा मानने चलेंगे, तो हो चुका । दिन भर मातम ही मनाना होगा । जानते तो हो उनकी आदत ।’

‘जानने से ही क्या पत्थर बना जा सकता है ? हाड़-मांस का मनुष्य जितना सह सकता है, उतना ही तो सह पाऊंगा । सच कहता हूं मीतू, पढ़ते हुए भी कभी-कभी इसी खयाल से कांप उठता हूं कि क्या होगा इतनी मेहनत का । अम्मा को खुश करने लायक परिणाम तो मेरा कभी बन नहीं सकता । तब फिर हफ्तों तक पुस्तक को हाथ लगाने की इच्छा नहीं होती ।’

पुरुष जब भीतर से टूटने लगता है, तो नारी का सहज स्नेह ही उसे संवल दे पाता है । इसी स्रोत से वह शक्ति ग्रहण करता है । नारी चाहे वह मां हो, पत्नी हो, बहन हो, मित्र हो...

कहां पढ़ा था यह ब्रह्मचर्य ! किसी नाटक में ? या किसी

भैया के पत्र में । कहीं भी पड़ा हो, आज इस बेला उसका स्मरण हो आना ही सार्वक हो उठा था ।

उम चार बी० कॉम० में हायरसेकंड क्लास पाने पर जब मैंने उनका अभिनंदन किया, तो बोले, 'अभिनंदन की असली हकदार तो तुम हो । परिणाम का सारा श्रेय तुम्हीं को जाता है ।'

शनिवार की शाम को मैं हमेशा की तरह पूजाघर में बैठी मुदर काढ़ का पाठ कर रही थी । पैरो की आहट सुनकर मिर उठाया, मौसाजी नहाकर शाम की मंझ्या-बंदना के लिए अदर आ गये थे । मेरी उपस्थिति में निर्निप्त होकर उन्होंने मूत्ती धोती उतार छूटी पर टगी लाल रंग की रेगमी धोती पहनी । आसन लेने के लिए इस ओर मुड़े, तो मुझे एकटक अपनी ओर देखते हुए पाया । अपनी सोंप मिटाते हुए बोले, 'कहिए पंडिताजी, क्या निरीक्षण हो रहा है ?'

'निरीक्षण यह हो रहा है कि इस पूजावाली धोती का काफी पहले रिटायरमेंट हो जाना चाहिए था ।' मैंने दबक स्वर में कहा ।

'एक बार और कायाकल्प कर दो इसका । अब की तनखा मिलने पर पहला काम यही करूंगा, ठीक है न !'

मैंने सिर हिला दिया । वे आसन पर बैठ गये । आचमन लेकर ध्यानस्थ होने को ही थे कि महमा मुझे कुछ याद आ गया, 'मौसाजी, भाग आपके थे तिवारीजी आये थे । गोरखपुर से किताबें मगायी थी न आपने, वे दे गये हैं ।'

'अच्छा ? कब लौटे वे लखनऊ से ?'

'कल ही आये हैं । और कह रहे थे—शर्माजी से कहना, मेरी मिठाई तैयार रखें । दफ्तर में पार्टी दे देने से ही आप बच नहीं जायेंगे ।'

एक शर्माजी मुसकान उनके चेहरे पर तैर गयी ।

'अच्छा मौसाजी, दफ्तर में तो आपने प्रमोशन की पार्टी दे दी और हमें बताया तक नहीं । चाहिए तो या कि सबसे पहले घर में मिठाई आती ।' मैंने मुह फुलाकर कहा ।

'घर में तनखाने जैसी कोई बड़ी बात नहीं थी, बिटिया । मेइक कितना

‘यह घर क्या शुरू से ही ऐसा मनहूस लगता रहा होगा !’ मैंने विस्मय में भरकर कहा ।

‘क्या पता ! तब इतना समझने की अवल कहां थी ! इतना याद है, बाबूजी यहां नहीं आना चाहते थे । सालभर तक वे पुराने मकान का किराया भरते रहे...पर अंत में उन्हें भी हथियार डाल देने पड़े । वे मुझसे अलग होकर नहीं रह सकते थे, मैं अम्मा के बिना नहीं रह पाता था । और अम्मा ! उनके लिए इतना बड़ा घर, इतने सारे नौकर, इतना ऐश्वर्य, इतनी हकूमत छोड़ना बहुत कठिन हो गया था । वैभव की इस दीड़ में मैं और बाबूजी कब पीछे छूट गये, पता ही नहीं चला । बाबूजी के पास तो फिर भी उनके ठाकुरजी हैं, लेकिन मैं क्या करूं ! अपने निष्प्रयोजन जीवन का क्या करूं ?’

‘तुम्हें क्या हो गया है आज ! कैसी ऊटपटांग बातें कर रहे हो जब से ।’

‘मां की नजरों में जो बेटा घूरे से भी गया-बीता हो गया हो, उससे अच्छी बातों की तो अपेक्षा नहीं की जा सकती ।’

ओह, अब समझी । सुवह वाली बात फांस की तरह चुभ रही है मन में अब तक ।

मैंने अपने स्वर में ढेर-सी ममता उंडेलकर कहा, ‘भीसी की बातों का बुरा मानने चलेंगे, तो हो चुका । दिन भर मातम ही मनाना होगा । जातते तो हो उनकी आदत ।’

‘जानने से ही क्या पत्थर बना जा सकता है ? हाड़-मांस का मनुष्य जितना सह सकता है, उतना ही तो सह पाऊंगा । सच कहता हूं मीतू, पढ़ते हुए भी कभी-कभी इसी खयाल से कांप उठता हूं कि क्या होगा इतनी मेहनत का । अम्मा को खुश करने लायक परिणाम तो मेरा कभी बन नहीं सकता । तब फिर हफ्तों तक पुस्तक को हाथ लगाने की इच्छा नहीं होती ।’

पुरुष जब भीतर से टूटने लगता है, तो नारी का सहज स्नेह ही उसे संबल दे पाता है । इसी स्रोत से वह शक्ति ग्रहण करता है । नारी चाहे वह मां हो, पत्नी हो, बहन हो, मित्र हो...

कहां पढ़ा था य

मी नाटक में । उदाहरण में ? या कल्पना

भैया के पत्र में । कहीं भी पढ़ा हो, आज इस बेला उसका स्मरण हो आना ही सार्थक हो उठा था ।

उस वार बी० कॉम० में हायर सेकंड बनास पाने पर जब मैंने उनका अभिनंदन किया, तो बोले, 'अभिनंदन की असली हकदार तो तुम हो । परिणाम का सारा श्रेय तुम्हीं को जाता है ।'

शनिवार की शाम को मैं हमेशा की तरह पूजाघर में बैठे मुंदर कांड का पाठ कर रही थी । पैरों की आहट सुनकर सिर उठाया, मौसाजी नहाकर शाम की मध्या-वंदना के लिए अंदर आ गये थे । मेरी उपस्थिति से निर्लिप्त होकर उन्होंने सूती धोती उतार खूटी पर टंगी लाल रंग की रेशमी धोती पहनी । आसन बने के लिए इस ओर मुड़े, तो मुझे एकटक अपनी ओर देखते हुए पाया । अपनी छेप मिटाते हुए बोले, 'कहिए पंडितानीजी, क्या निरीक्षण हो रहा है ?'

'निरीक्षण यह हो रहा है कि इस पूजावाली धोती का काफी पहले रिटायरमेंट हो जाना चाहिए था ।' मैंने दबग स्वर में कहा ।

'एक धार और कायाकल्प कर दो इसका । अब की सनखा मिलने पर पहला काम यही फरूगा, ठीक है न !'

मैंने मिर हिला दिया । वे आसन पर बैठ गये । आचमन लेकर ध्यानस्थ होने को ही थे कि महमा मुझे कुछ याद आ गया, 'मौसाजी, आज आपके वे तिवारीजी आये थे । गोरखपुर से किताबें मंगायी थी न आपने, वे दे गये हैं ।'

'अच्छा ? कब लौटे वे लखनऊ से ?'

'कल ही आये हैं । और कह रहे थे—शर्माजी से कहना, मेरी मिठाई तैयार रखें । दफ्तर में पार्टी दे देने से ही आप बच नहीं जायेंगे ।'

एक शर्माजी मुसकान उनके चेहरे पर तैर गयी ।

'अच्छा मौसाजी, दफ्तर में तो आपने प्रमोशन की पार्टी दे दी और हमें बताया तरु नहीं । चाहिए तो था कि सबसे पहले घर में मिठाई आती ।' मैंने मुह फुलाकर कहा ।

'घर में बतलाने जैसी कोई बड़ी बात नहीं थी, बिटिया । मेडक कितना



भी फूल जाए, बैल तो वनने से रहा। दफ्तर का बाबू हूँ, प्रमोशन हो गया तो बहुत-से-बहुत ओ० एस० बनूंगा और क्या !'

हंसकर ही कही थी उन्होंने यह बात, लेकिन उसमें छलकती हुई व्यथा को मैंने पा लिया और मैं भी उदास हो आयी। सुख में हो या दुःख में, मनुष्य को सबसे पहले घर ही याद आता है। कैसे ज्वल कर पाये होंगे इतनी बड़ी खुशी को वे मन-ही-मन में ! तिवारीजी बता रहे थे, दफ्तर में उन्होंने बहुत शानदार दावत दी थी। बाहर की दुनिया में जो इतना लोकप्रिय है, उसका अस्तित्व घर में इतना नगण्य क्यों है। मुझे तो कई दिनों तक यह भी नहीं पता था कि वे दफ्तर भी जाते हैं। उनके ऑफिस आने-जाने को लेकर घर में कोई गहमागहमी नहीं होती थी। जूनी केसरा बाखलवाले घर की एक धुंधली-सी याद है कि मौसाजी बाहर से लौटे हैं, तो मौसी ने आगे बढ़कर हाथ से झोला लिया है। उनके लिए चाय बनायी है, उनके लिए पान लगाया है। अब तो मौसी के पास इतना समय ही कहाँ है। मिसरानी है, रामदीन है, वे ही सब देखभाल लेते हैं।

प्राणायाम की मुद्रा में बैठे मौसाजी पौराणिक चित्रों के शिव की तरह लग रहे थे। ठाकुरजी के पास जलते हुए दीपक का मंद प्रकाश उनके सुदर्शन व्यक्तित्व को रहस्यमय बनाये दे रहा था।

रहस्यमय ही तो थे वे। कितना जानते थे हम लोग उनके विषय में ! घर से बाहर की दुनिया में उनका क्या रूप था, कभी जाना ही नहीं।

पिछली साल की एक बात याद आयी। नया-नया कॉलेज था, नयी-नयी सहेलियाँ थीं। सबसे ज्यादा अच्छी लगी थी मधूलिका। श्रीनगर कॉलोनी में बड़ा-सा बंगला था उसका। रोज़ गाड़ी छोड़ने आती थी, लेकिन बातचीत में अमीरी की जरा भी बू नहीं थी। बहुत जल्दी घुल-मिल गयी थीं हम दोनों। दो-चार बार उसके घर हो आने पर मैंने उसे अपने घर भी आमंत्रित किया था। तीन-चार घंटे तक गपशप की महफिल जमने के बाद जब वह जाने को हुई, तो मैं फाटक तक उसे छोड़ने गयी थी।

उसी समय मौसाजी अपनी साइकिल लिये दफ्तर से लौट रहे थे।

'अच्छा, तो ये पंडितजी तुम्हारे यहां भी आते हैं ?' मधूलिका ने पूछा।

‘कौन-से पंडितजी ?’

‘यही जो अभी अंदर गये। हमारे पीछे सर्वेंट्स क्वार्टरमें हैं न वहां हर रविवार को इनका चक्कर लगता है। खूब भक्तिमें जोड़ रखी हैं। दो-दो घंटे तक भविष्य वाचते रहते हैं। यू नो, ही इज ए लेडी-क्लिर।’

इससे ज्यादा मुझमें सुना नहीं गया था, ‘मधु, ही इज माय...वे मेरे मौमाजी हैं। ज्योतिष बहुत अच्छा जानते हैं और किसी से कुछ लेते भी नहीं। तुम तो जानती हो, ऐसे लोगों के लिए हिंदुस्तान में भक्तों की कमी नहीं रहती।’

साँरो नमिता, मुझे मालूम नहीं था।’ मधु ने झंपने हुए कहा था। बात आयी-गयी हो गयी थी, पर जब भी मधु को देखती, वही बात याद आ जाती। क्या वह सच कह रही थी? ऐसा होना अमभव भी तो नहीं है? मनुष्य ही तो हैं आखिर वे। कहां तो उनके अह की तुष्टि होनी चाहिए। परनी द्वारा निरंतर साछिन और अपमानित व्यक्तित्व को कहीं तो सिर उठाने का अवसर मिलना चाहिए। नहीं तो कोई जियेगा कैसे!

‘बिटिया !’

‘जी ?’ मैंने चौंकर कहा।

‘पाठ कर रही हो न !’

‘कर तो रही हूँ। आपने बीच में टोक दिया।’

‘तुम कर नहीं रही थी, इनीलिए टोका था। पता है, तुम कितनी देर से एक ही पन्ना खोलें बंटी हो।’

‘आज मन ही नहीं लग रहा।’ और मैंने रामायण बंद करके रख दी।

‘मन अपने से लगता थोड़े ही है, उमर तो कान पकड़कर लगाना पड़ता है।’ और उनकी इस बात पर हम दोनों ही हस पड़े।

‘बिटिया !’ वे एकाएक गंभीर होकर बोले।

‘कहिए।’

‘अपना मन अच्छे से टटोलकर देखा है तुमने ? तुम कहोगी, तो अब भी सारा आयोजन उछाड़कर फेंक सकती हैं। बुराई जो भी आनी होगी, मेरे मिर आयेगी, तुम चिंता मत करो।’

‘आप पता नहीं, क्या कह रहे हैं।’

‘यह मत सोचो मीता ब्रेटी, कि मैं भी तुम्हारी मौसी की तरह अंधा हो गया हूं। मेरी आंखें सब कुछ देखती हैं। तुम एक बार संकेत भर कर दो, फिर देखो मैं क्या करता हूं।’

‘मौसाजी, आप तो गलत-सलत पता नहीं, क्या सोच लेते हैं।’ मैंने बेसुरी खिलखिलाहट के साथ कहा और बाहर भाग आयी। पूजाघर के बाहर खड़ी होकर पहले अपनी उफनती सांस को सामान्य किया, फिर धीरे-धीरे मां के कमरे की ओर चल पड़ी।

हाल में मौसी रंग-विरंगे कपड़ों का अंवार लेकर बैठी थीं।

‘ऐ छोकरी, कहाँ थी अभी तक?’

‘शनिवार की शाम को मैं क्या करती हूँ, मालूम है न।’

‘हां, सो तो सब मालूम है। एक वो नरसी भगत कम थे घर में! अब ये एक मीराबाई बनी जा रही है।’

‘काम क्या है, बोलो न!’

‘काम क्या एक है, इन साड़ियों पर फाल लगाने हैं। इनमें मोती टांकने हैं, इनमें गोटा लगेगा, इन पर फूल लगेंगे...’

‘एक दर्जी बिठा लो न घर में, चुटकी में सब काम हो जाएगा।’ मैंने बेजारी से कहा।

‘दर्जी तो बिठा लूं, पर फिर तू नेग किस बात का लेगी बता तो। वहन-ब्रेटी के यही तो काम होते हैं। और यह कार्डों का डिब्बा ले जा। सब नमूने देखकर, छांटकर अच्छा-सा ब्लॉक बनवा दे...तेरे मौसाजी कहाँ हैं?’

‘पूजा में।’

‘वस, और किया ही क्या है जिंदगी भर। उनसे कहो कि जल्दी से फैक्टरी चले जाएं। आज के दिन लड़का जरा जल्दी घर आ जाता, तो टेलर के यहां हो आता। सूट का ट्रायल लेना है। दिनभर तो फैक्टरी में चला जाता है...’

फैक्टरी-फैक्टरी-फैक्टरी...सुन-सुनकर मेरे कान पक गये हैं। वेडिंग कार्ड्स का डिब्बा उठाकर मैं मां के कमरे में आकर बैठ गयी। अपने कमरे

मे जाते हुए डर लगता है। अकेलेपन में कभी-कभी कितने ऊटपटांग विचार आते हैं।

मौसी की तेज आवाज यहां तक आ रही है। शायद फैंक्टरी में फोन किया जा रहा है। फैंक्टरी—द शर्मा स्टील वर्क्स। प्रोप्रायटर एण्ड जनरल मैनेजर श्री हरिप्रसन्न शर्मा, वी० कॉम०। उद्घाटन के फोटोज का अच्छा-खासा अलवम सँवार हो गया है। कोई स्थानीय अखबार नहीं बचा होगा, जिसमें फोटो नहीं छपे होंगे। अविवाहित, युवा, मेधावी जनरल मैनेजर की प्रशंसा में किराये से लेख लिखवाये गये थे। समझ में नहीं आ रहा था कि इतनी प्रचार की आखिर क्या जरूरत थी।

लेकिन मौसी की दूरदर्शिता का लोहा मानना पड़ा, जब घडाघड़ बधु-पिताओं के पत्र आने प्रारंभ हुए। हर पत्र के आने पर बाकायदा सिलेक्शन कमेटी बैठती। लाभ और हानि की मर्दों पर विचार-विनिमय होता। मौसाजी हमेशा की तरह तटस्थ बने रहते।

गंभावित पुत्रबधुओं की चित्र-प्रदर्शनी में एक दिन परिचित चेहरा भी मम्मिलत हो गया और मौसी ने निर्णय ले ही लिया। वह चित्र था सुलक्षणा पाठक का।

यद्यपि ग्टायर होने के बाद जज साहब का वैभव पहले का-भा नहीं था, फिर भी यह रिश्ता और सबसे बड़ेतर था। मौसी का एक चिरसंचित स्वप्न पूरा हो गया था कि हरि के लिए भी ढेर-मारे रिश्ते आये थे। सुलक्षणा को स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा था, 'उसने यही देहरी पूज रखी होगी, तभी तो अब तक कुंवारी बैठी है।'

शायद ठीक ही कह रही होगी वे।

'क्या कर रही है, मौसा?' मा के पलंग से क्षीण स्वर में प्रश्न आया।

'निर्मंत्रण-पत्र का मसौदा बना रही हूँ।' मैने ठंडे स्वर में जवाब दिया।

'तेरी मौसी क्या कर रही है?'

'साड़ियों का ढेर लेकर बैठी हैं।'

'वह साड़ियों में फात लगाने को कह रही थी, लगा दिये?'

'लगा दूंगी, जल्दी क्या है।'

'हां, जल्दी क्या है, अभी तो पूरा महौना पड़ा है...लेकिन देख तो,

अभी से कैसी रौनक हो गयी है घर में और....' और बात खतम करते-करते मां सुबकने लगीं ।

‘अब इसमें रोने की कौन-सी बात है ?’ मैंने खीजकर पूछा । आज जैसे सवने मेरी सहनशक्ति की परीक्षा लेने की ही ठान ली थी ।

‘मनु के लिए दुःख होता है रे । उसके लिए कुछ भी नहीं किया जा सका । पता नहीं, कहां, किस मंदिर में जाकर फेरे पड़वा लिये थे वेचारे न । क्या-क्या सोच रखा था, पर कुछ नहीं हो सका ।’

‘आज उसके लिए आंसू वहाने की क्या तुक है, मां ।’ मैंने बुझे स्वर में कहा । मन तो हो रहा था कि चीखकर कहूं—मां, रोना ही है, तो आज मीतू के लिए रोओ । मनु के लिए रोने का समय तो बहुत पीछे छूट गया ।

पुरुष होते हुए भी मौसाजी ने जो जान लिया था, उससे मां होकर भी मां अनजान कैसे रह गयी ! अपनी व्यथाओं के भुरमुट से एक बार तो बाहर आकर झांकती कि कहां क्या हो रहा है ।

मां के स्वभाव का भी कुछ पता नहीं चलता । कहां तो बेला भाभी के लिए एक चेन भी उन्होंने नहीं दी थी; नलिन के जन्म पर एक अंगूठी तक हम लोग भेज नहीं पाये थे, और अब...गहनों-कपड़ों का अंवार लग गया है । यह सब कहां से हो रहा है, क्या मैं जानती नहीं !

जिस फैक्टरी का इतना ढोल पीटा जा रहा है, उसकी पोल भी मुझसे छिपी नहीं है । नानाजी की ज़मीन एकाएक ऊंचे दामों पर बिक गयी थी और मां ने अपना हिस्सा भी मौसी के नाम कर दिया था । स्टील फर्नीचर का कारखाना खोल लिया गया था । और वी० कॉम० के बाद बलर्की के लिए वांटेड के कॉलम्स पढ़नेवाले हरि भैया एकाएक जनरल मैनेजर की कुर्सी पर पहुंच गये थे ।

और उस कुर्सी ने उन्हें भीतर-बाहर कितना बदल डाला था ।

और मेरा सारा रोप मां पर उमड़ पड़ा, ‘तुम्हारा भी तो जवाब नहीं है, मां । मर्जी आयेगी, तो दूसरों के लिए घर लुटाकर रख दोगी । नहीं तो पेट-जाये लड़के के नाम तुम्हारे पास कौड़ी तक नहीं निकलेगी । लोग भी तो कैसे चंट होते हैं, मीठी-मीठी बातों से किसी को फुसला कर अपना काम खूब बना लेते हैं ।

‘मो—ता !’

माँ के स्वर में अप्रत्याशित कड़क थी। मैं सहम कर चुप हो गयी।

‘यह तुझे क्या हो गया है, लड़की ! आजकल तू इतनी जहरबुझी बानें कहां से सीख गयी है। ये अपने-पराये की भाषा कोन सिखा गया है तुझे ? मैं किसी को कुछ नहीं दे रही हूँ रे। सिर्फ पुराना वज्र उतार रही हूँ। इतना भी नहीं करूंगी, तो सुख से मरना भी नमीब नहीं होगा मुझे।’

माँ दिन में तीन बार तो मरने की तैयारी कर ही लेती थी। इसलिए मुझ पर कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं हुई। ‘और तुझे मौमी पर इतना गुस्सा क्यों आता है रे ! बरसों के बाद तो मुझ के दिन देख रही है वह। सारी जिदगी सिखा गरीबी के देखा ही क्या है उसने। कभी मन भरकर ओढ़ा नहीं, पहना नहीं। कितनी बसमें दे-दिनाकर कभी एकाग्र चीज दे पायी हूँ उसे। इतनी स्वाभिमानी है वह !’

माँ एकदम गलत भी नहीं कह रही थी। इस मारे ताम-शाम के बीच भी मौमी एकदम सादगी से रहती थी। तीज-रवोंद्वारों पर माँ जिद करके उन्हें अपने गहने-कपड़ों से मजानी, फिर उनका चेहरा अपने दोनों हाथों में उठाकर कहतीं, ‘छोटी, मच भगवान ने कैसा राजरानी-माँ रूप देकर भेजा है तुझे घरती पर !’

‘लेकिन दीदी, किम्मत तो भिछारियों की दी है न, उसका कोई क्या करे।’ मौमी अपने को छुटाकर कहतीं। यह बात खूब जोर से कही जाती, जिसमें मौमाजी उसे जरूर सुन लें। तब मौसाजी का चेहरा धमपा से कासा पड़ जाना और हमारी मारी सहानुभूति उन्हीं के साथ होती।

माँ की बनारसी साठिया मौसी मीटाने आती, तो माँ कहती, ‘रहने दे न ! यहा भी तों पड़ी-पड़ी मड़ ही रही हैं।’

‘न, जीजी ! इतने अच्छे कपड़े मुझ पर सज्जे भन्ना। अपनी ओकाज भी तों मुझे देखनी चाहिए। मैं तो तुम्हारे चरणों में पड़ी हूँ, इसलिए कि लड़के की जिदगी बन जाएगी। नहीं तो पता नहीं कहा भीख मागता फिरेगा।’

यह तो बड़े होने पर ही पता चला कि ये बातें माँ से कहने का बहाना भर होता था, असली लक्ष्य होते थे लड़के के पिता।

मैंने तिव्र स्वर में कहा, ‘पता नहीं नानाजी ने दोनो लड़कियों के

साथ इतना पक्षपात क्यों किया। वे तो कन्यादान करके छुट्टी पा गये, जिंदगी भर का काला पानी भुगतना पड़ा है मौसाजी को।'

‘कोई खुशी से अपनी बेटी कुएं में नहीं फेंक देता री ! उसका इतना बड़ा सर्वनाश तो मेरे कारण हुआ है।’

‘तुम्हारे कारण ?’

‘हां, तुम्हारे पापा के कारण।’

कमरे में कुछ समय तक केवल मेरी चूड़ियों की खनक ही सुनाई देती रही।

‘मनु के जन्म के समय की बात है। मैं सातवां लगते ही माताजी के पास हैदराबाद आ गयी थी। तेरे पापा बंगलौर में थे। वहां और कोई नहीं था, इसलिए मनु चार-पांच महीने का हो गया, तब भी मुझे उन लोगों ने भेजा ही नहीं। मैं भी मजे में थी, क्योंकि तेरे पापा हर पंद्रह-बीस दिन बाद आते रहते थे। वे आते थे, तो घर में रौनक-सी आ जाती थी। माताजी रसोई में घिरी रहतीं। छोटी अपने जीजा के आगे-पीछे घूमती रहती। घर में छोटा और कोई था नहीं। सेवा का सारा भार उसी पर था। वे भी दिन भर शामली-शामली का जप किये रहते।’

‘तुम्हें बुरा नहीं लगता था ?’

‘बुरा लगने जैसा तो इसमें कुछ था ही नहीं। साली-बहनोई का रिश्ता तो ऐसा ही होता है। फिर मैं तो उस समय अपने रूप-लावण्य पर रीझी हुई थी। एक बेटे को जन्म देकर सोचती थी, मैंने स्वर्ग का राज्य जीत लिया है। यह अकल नहीं थी कि कर्तृत्ववान पुरुष सिर्फ सौंदर्य पर नहीं रीझा करते। बुद्धिमती नारी का आकर्षण भी उतना ही प्रबल होता है। वे इतने विद्वान थे और मेरे पास बात करने के लिए सिर्फ एक ही विषय था—मनु, हमारा मुन्ना। छोटी और वे दिन-रात गपशप किया करते और मैं दिनभर अपने लाड़ले को दुलराया करती, उसके लिए स्वेटर बुनती रहती। अपनी इस वेवकूफी का ध्यान आया तो...मगर तब तक बहुत देर हो चुकी थी।’

‘यानी ?’ मैंने घड़कते हृदय से पूछा, पर मां को शायद मेरा प्रश्न सुनाई ही नहीं दिया।

‘जब सारी बात पता चली, तो पिताजी बुरी तरह घबरा गये। माताजी तो घाट से ही लग गयी। मैंने पहले तो उसे खूब कोसा, फिर समझाया-बुझाया, मनु को उसके पैरों पर डाल दिया। पर वह डेरनी की तरह अडिग रही। ‘बोली—‘मैं तुम्हारा कोई हक छीन नहीं रही, जीजी। लेकिन अपना अधिकार भी मैं नहीं छोड़ूंगी। बाबा रे, उसकी हिम्मत देगकर तो हम दातों-तले उगली दवाकर रह गये थे।’

‘फिर?’

‘फिर क्या, जिस विश्वास पर वह पैर जमाकर सटो हुई थी, वही जब भरभराकर गिर पड़ा, सब कही जाकर वह अवॉर्शन के लिए राजी हुई थी।’

‘उफ!’

‘दूसरा उपाय ही क्या था। तेरे पापा तो मुह छिपा गये थे। कंपनी में उन दिनों वे चीफ एडवाइजर के पद पर थे। और भी ऊँचा उठने के स्वप्न देख रहे थे। यह बदनामी उनका भविष्य खराब कर सकती थी। उन्होंने मैरोवी ग्रांच में ट्रांसफर मांग लिया। मुझे लिवाने भी नहीं आये। उनकी चिट्ठी पाकर पिताजी का कारकून ही मुझे छोड़ आया था।’

‘इतनी निष्ठुरता!’

‘ऐसा ही होता है, मीता। महत्वाकांक्षी पुरुष पता नहीं, कितनों की भावनाओं को रौंदता चला जाता है। उसे जरा भी मसाल नहीं होता। घर के पुरोहित का लडका उसके आगे-पीछे घूमता रहता था। पिताजी ने बहला-फुसलाकर उसी से छोटी को ब्याह दिया। लडकी एक बार बदनाम हो जाए, तो शादी में कितनी मुश्किलें आती हैं, तुम्हें पता नहीं है।’

‘मीमाजी को पता था सब?’

‘क्या पता, उनके मन की चाह किसी ने पायी भी है कभी।’

‘वे जरूर जानते होंगे। वे सबके मन की जान जाते हैं। तभी न इतनी दूर आकर बस गये हैं।’

अपनी लंबी कहानी सुनाकर मा निढाल होकर पड़ गयी थी। मेरे मन में एक हाहाकार-सा उठा। मैंने मचलकर कहा, ‘मा, यह सब मुझे सुनाने की



जबरत थी। पापा की कितनी प्यारी इमेज थी मेरे मन में।  
जट करके तुम्हें क्या मिला ?

और मुझे सचमुच लगा कि गां ने पुराने अन्याय का नये सिरे से प्रतिशोध लिया है। लेकिन मेरे हुए व्यक्ति से प्रतिशोध, छिः !  
'पापा की प्रतिमा के बनने-विगड़ने से अब क्या फर्क पड़ता है, मीतू !  
लेकिन मौसी के लिए तू थोड़ा सहृदय होकर सोच सके, इसीलिए यह सब कहना पड़ा है। जरा सोच तो, वह अपनी वाजी जीत जाती, तो आज वाध्य नहीं होती क्या ? जरा सोच तो।'

क्या सोचना था मुझे। मां ने तो सारी रामायण इसलिए सुनाई थी कि मौसी के प्रति मेरा आक्रोश कुछ कम हो। कुछ सहानुभूति उमड़े। सहानुभूति उमड़ी तो पर मां के लिए। कैसा लगा होगा, फिर उस व्यक्ति के साथ दाम्पत्य निभाता ! उसके बच्चों को जन्म देते समय क्या मौसी के अजन्मे शिशु की याद नहीं आयी होगी ! मौसी से मुंह छिपाकर तो अफ्रीक चले गए ये लोग। पर क्या अपने आपसे बच सके होंगे ? अपने आपक छल सके होंगे ?

विचारों का एक रेला-सा उमड़ आया था मन में। उसे सप्रयास हटाकर मैं पुनः कुर्सी पर आकर बैठ गयी थी। राइटिंग पैड सामने खिस कर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा—हरिप्रसन्न और सुलक्षणा का शुभ विवा

रसोई में आकर मैंने चाय का कप उठाया ही था कि मौसी ने कहा,  
'हरितालिका है न, मीतू ?'  
'ओह, मुझे याद ही न रहा।' मैंने खिसियाकर कहा और क

रख दिया।  
'पता है काकी, मीता इतनी-सी थी, तब से तीजा उपासी

'पानी की बूंद तक नहीं लेती।' मौसी ने मिसरानी से कहा।  
'हूँ जाणू नइ काई। तवई तो संकर भगवान् परसण होइ।'

'मुझे तो उनके परसन्न होने की कोई खबर नहीं मिली।  
क्या संकर भगवान् का टेलीफोन आया है ?'

‘हे म्हाारा बाप ! तमे मालम नी पड़ी काई । अन्ने हाल तारवालो कागद दे गियो नी नानी बाई ?’

मुझे सचमुच ही कुछ मालूम नहीं था । मैंने घड़कते दिल से मौसी की ओर देखा ।

‘इमे कहा मे पता होगा, काकी । भीषी विस्तर से उठकर चली आ रही है ।’

‘किमका तार था ?’

‘मनीष का । पंचमी को तेरी सगाई हो रही है । बाजपेयी लोगों को लेकर वह आ रहा है ।’

‘कौन ? भैया आ रहे हैं ?’

‘हा, फिर त्याद पड़ जायेंगे, तो सारे काम धरे रह जायेंगे न ! इसी से इतनी जल्दी है ।’

मैं चुप हो रही । गर्मियों में भैया के यहां रायपुर में जिस युवक का साक्षात्कार हुआ था, उसकी आकृति आखो के सामने लाने का यत्न करने लगी ।

‘लुगायां को जलम बापडो ऐगोज है हो । बाप को घर को सुख चार दिण को, फेर तो...पर या नानी बाई धली जावेगा, तो सुन्नकार हो जावेगा हो ।’ और काकी तो यूँ बिमूरने लगी, जैसे मेरी डोली उठने ही वाली है । मैं मुश्किल से अपनी हलायी रोक पायी । अपने कमरे में लौट जाने में ही मैंने कुशल समझी । ‘बाई तो चाल्या रे समुराल’ की कण्ठ स्वर-लहरी सीढ़ियों पर भी मेरा पीछा करती रही ।

‘मीता !’ मौमी ने आवाज दी ।

‘अपनी भाभी से कहना, ग्यारह बजे पंडितजी पूजा करवाने के लिए आयेंगे । वह तैयार होकर नीचे आ जाए ।’

दरअसल यह बात मौमी ने इतनी जोर से कही थी कि अपने कमरे में भाभी ने उसे जरूर सुन लिया होगा । इतनी सुबह उनके कमरे में जाने की मेरी इच्छा भी नहीं थी, पर मौसी नीचे पहले पर खड़ी थी, इसलिए यह काम टाला नहीं जा सका ।

‘दो बार हल्की दस्तक देने के बाद ‘कम इन’ का संदेशा पाकर मैंने

दरवाजा खोला और स्तब्ध रह गयी ।

भाभी अपनी छोटी-सी डायनिंग टेबुल पर नाश्ता कर रही थीं—वह भी आमलेट का । भाभी अंडे लेती हैं, हम लोग जानते थे । उनके छोटे-से फ्रिज में दो-चार अंडे हमेशा रखे रहते थे । अपने कमरे में अक्सर ही वे मनपसंद नाश्ता बनाकर लेती रही हैं, पर आज...

‘भाभी, आप शायद भूल गयीं कि आज हरितालिका है ।’ मैंने किसी तरह इतना कहा ।

‘नहीं नमिताजी, भूली तो नहीं हूं । कुछ भी भूलने की सुविधा आपके यहां कहां है ?’

मैं प्रश्नार्थक दृष्टि से उनकी प्लेट को देखती रही ।

‘नाश्ते की बात सोच रही हो न । वह तो एक ‘एंटीडोट’ के रूप में ले रही हूं । इस जन्म में जो सौभाग्य मिला है, उसे जन्म-जन्मांतर तक वहन करने की सामर्थ्य नहीं है मुझमें ।’

स्तब्ध रह गयी मैं । मन हुआ, वेडरूम में झांककर देख लूं, हरि भैया सुन तो नहीं रहे । भाभी ने किसी अंतर्द्वार की तरह मेरे मन की बात पढ़ ली । हंसकर बोलीं, ‘ननदरानी, क्यों अपने मन को क्लेश दे रही हो । तुम्हारे भैया अस्सल सूर्यवंशी हैं । सूर्य जब तक सिर पर नहीं चढ़ आता, वे नहीं उठते । रातभर सड़कें नापने के वाद अभी-अभी तो सोये हैं बेचारे ।’

मुझसे यह निन्द्य परिहास अधिक नहीं सुना गया । अपनी मुद्रा को यथाशक्ति कठोर बनाकर कहा, ‘मैं तो मौसी का संदेश देने के लिए आयी थी । ग्यारह बजे पंडितजी आयेंगे, आप तैयार होकर नीचे पहुंच जायें ।’

‘आ जायेंगे भाई, पूजा की फार्मेलिटी भी हो जाए, क्या फर्क पड़ता है । लेकिन नमिता, इस घर में वालूरेत के महादेव की इतनी प्रतिष्ठा क्यों है ! हमारी पूज्यनीया अम्माजी का अपने जीते-जागते महादेव के साथ जैसा...’

अधिक सुनना मेरी सामर्थ्य के बाहर था । बाहर आकर मैंने दरवाजा जोर से बंद कर लिया, ताकि आगे की बात मेरे कानों तक न पहुंचे ।

कमरे में आकर मैं सुन्न होकर बैठी रही । अभी शादी को दो साल भी नहीं हुए, भाभी में कितनी कड़वाहट आ गयी है । शादी होकर आयी थीं, तब

वे ऐसी नहीं थीं। अपनी लजीली मुसकान से तब घर भर को एक उजास से भर देती थीं वे। हरि भैया तब भी कितने खिले-खिले-से रहते थे।

लेकिन हथेली की मेंहदी भी न उतर पायी थी कि यह रंग उतरने लगा था। ये मुसकानें वृद्धने लगी थी।

और इसके लिए सिर्फ मौसी ही उत्तरदायी हैं। एक-दूसरे में खोया हुआ यह सारस का जोड़ा उन्हें फूटी आंखों नहीं मुहाता था। दिनभर दरवाजों को देखकर वे क्रोध में भुनभुनाती रहती। कभी-कभी ऐसी बातें भी कह बैठती कि पास बंठी में शर्म से गड़ जाती।

एक दिन अकेले में मौसाजी ने मेरे हाथ में एक लिफाफा पकड़ाकर कहा था—'बिटिया! हरि से कहो, कहीं घूम घाम आये। घर में तो फिर सारी ज़िदगी रहना ही है।'

'लेकिन यह है क्या?'

'थोड़े से रुपये हैं, बेटा!' उन्होंने अत्यंत सकुचित होकर कहा था। मैं फिर ज्यादा कुछ नहीं पूछ सकी थी। अपनी छोटी-सी नौकरी में बड़े पत्न से जोड़ी हुई यह पूजी उन्होंने बेटे की खुशो के नाम कर दी थी।

लेकिन खुशी मिसी नही! हिम्मत करके हरि भैया ने गोवा घूमने का इरादा किया, तो घर में जैसे तूफान आ गया। एक तो उन्होंने अपने मन से ऐसा इरादा किया—मौसी को नाराज होने के लिए यही बहुत था। फिर मौसाजी के अनुदान ने तो आग में घी का काम किया था। बाप-बेटे दोनों ही एक साथ कटघरे में खड़े हो गये थे।

गोवा तो खैर वे लोग गये ही, नयोंकि पहली बार मौसी को पति के दृढ़ निश्चय से टककर लेनी पड़ी थी। और वे हार गयी थीं। लेकिन घूमने का आनंद निर्मल नहीं रह सका। लौटने पर भी प्रेमी-युगल का जैसा स्वागत हुआ, उससे बिछरे हुए हृदयों को पास आने का मंवल नहीं जुट सका था।

शायद मौसी को सबसे ज्यादा ईर्ष्या उम प्रेम के आवेग से थी, जो उनके दांपत्य जीवन को कभी सराबोर नहीं कर सका। संभवतः इसीलिए उनका रूप बेटे-बहू को लेकर इतना विकृत हो गया था।

लेकिन हमेशा निलिप्त रहने वाले मौसाजी इस विवाह के बाद घर में रस लेने लगे थे। मौसी का कोई वाक्-शर सीधा बहू पर न पड़े, इसके लिए

खोला और स्तब्ध रह गयी।  
भाभी अपनी छोटी-सी डायनिंग टेबुल पर नाश्ता कर रही थी—  
मलेट का। भाभी अंडे लेती हैं, हम लोग जानते थे। उनके छोटे-से  
में दो-चार अंडे हमेशा रखे रहते थे। अपने कमरे में अकसर ही वे  
संद नाश्ता बनाकर लेती रही हैं, पर आज...।  
'भाभी, आप शायद भूल गयीं कि आज हरितालिका है।' मैंने किसी  
ह इतना कहा।

'नहीं नमिताजी, भूली तो नहीं हूँ। कुछ भी भूलने की सुविधा आपके  
हां कहां है?'  
मैं प्रश्नार्थक दृष्टि से उनकी प्लेट को देखती रही।  
'नाश्ते की बात सोच रही हो न। वह तो एक 'एंटीडोट' के रूप में ले  
रही हूँ। इस जन्म में जो सौभाग्य मिला है, उसे जन्म-जन्मांतर तक वहन  
करने की सामर्थ्य नहीं है मुझमें।'

स्तब्ध रह गयी मैं। मन हुआ, वेडरूम में झांककर देख लूं, हरि भैया  
सुन तो नहीं रहे। भाभी ने किसी अंतर्धामी की तरह मेरे मन की बात पढ़  
ली। हंसकर बोलीं, 'ननदरानी, क्यों अपने मन को बलेश दे रही हो। तुम्हारे  
भैया अस्सल सूर्यवंशी हैं। सूर्य जब तक सिर पर नहीं चढ़ आता, वे नहीं  
उठते। रातभर सड़कें नापने के बाद अभी-अभी तो सोये हैं बेचारे।'  
मुझसे यह निन्द्य परिहास अधिक नहीं सुना गया। अपनी मुद्रा को  
यथाशक्ति कठोर बनाकर कहा, 'मैं तो मौसी का संदेश देने के लिए आयी  
थी। अगर वह वजे पंडितजी आयेंगे, आप तैयार होकर नीचे पहुंच जायें।'  
'आ जायेंगे भाई, पूजा की फार्मेलिटी भी हो जाए, क्या फर्क पड़ता है  
लेकिन नमिता, इस घर में वालूरेत के महादेव की इतनी प्रतिष्ठा क्यों है  
हमारी पूज्यनीया अम्माजी का अपने जीते-जागते महादेव के साथ जैसा  
अधिक सुनना मेरी सामर्थ्य के बाहर था। बाहर आकर मैंने दरवा  
जोर से बंद कर लिया, ताकि आगे की बात मेरे कानों तक न पहुंचे।

कमरे में आकर मैं सुन्न होकर बैठी रही। अभी शादी को दो साल भ  
हुए, भाभी में कितनी कड़वाहट आ गयी है। शादी होकर आयी

वे ऐसी नहीं थी। अपनी लजीली मुसकान से तब घर भर को एक उजास से भर देती थीं वे। हरि भैया तब भी कितने खिले-खिले-से रहते थे।

लेकिन हयेली की मेहदी भी न उतर पायी थी कि यह रंग उतरने लगा था। ये मुसकानें बुझने लगी थी।

और इसके लिए सिर्फ मौसी ही उत्तरदायी हैं। एक-दूसरे में खोया हुआ यह सारस का जोड़ा उन्हें फूटी आंखों नहीं सुहाता था। दिनभर दरवाजों को देखकर वे क्रोध में भुनभुनाती रहती। कभी-कभी ऐसी बातें भी कह बैठती कि पास बंठी मैं शर्म से गड़ जाती।

एक दिन अकेले में मौसाजी ने मेरे हाथ में एक निफाफा पकड़ाकर कहा था—'बिटिया ! हरि से कहो, कहीं धूम-धाम आये। घर में तो फिर सारी ज़िंदगी रहना ही है।'

'लेकिन यह है क्या ?'

'थोड़े से रुपये हैं, बेटा !' उन्होंने अत्यंत संकुचित होकर कहा था। मैं फिर ज्यादा कुछ नहीं पूछ सकी थी। अपनी छोटी-सी नौकरी में बड़े यत्न से जोड़ी हुई यह पूजी उन्होंने बेटे की खुशी के नाम कर दी थी।

लेकिन खुशी मिली कहा। हिम्मत करके हरि भैया ने गोवा धूमने का इरादा किया, तो घर में जैसे तूफान आ गया। एक तो उन्होंने अपने मन से ऐसा इरादा किया—मौसी को नाराज होने के लिए यही बहुत था। फिर मौसाजी के अनुदान ने तो आग में घी का काम किया था। बाप-बेटे दोनों ही एक साथ कटघरे में खड़े हो गये थे।

गोवा तो खैर वे लोग गये ही, क्योंकि पहली बार मौसी को पति के दुःख निश्चय से टक्कर लेनी पड़ी थी। और वे हार गयी थी। लेकिन धूमने का आनंद निर्मल नहीं रह सका। लौटने पर भी प्रेमी-युगल का जैसा स्वागत हुआ, उससे बिखरे हुए हृदयों को पास आने का मकल नहीं जुट सका था।

शायद मौसी को सबसे ज्यादा ईर्ष्या उस प्रेम के आवेग से थी, जो उनके दांपत्य जीवन को कभी सराबोर नहीं कर सका। संभवतः इसीलिए उनका रत्न बेटे-बहू को लेकर इनना विकृत हो गया था।

लेकिन हमेशा निर्लिप्त रहने वाले मौसाजी इस विवाह के बाद घर में रस लेने लगे थे। मौसी का कोई बाक्-शर सीधा बहू पर न पड़े, इसके लिए

दरवाजा खोला और स्तब्ध रह गयी ।

भाभी अपनी छोटी-सी डायनिंग टेबुल पर नाश्ता कर रही थीं—वह भी आमलेट का । भाभी अंडे लेती हैं, हम लोग जानते थे । उनके छोटे-से फ्रिज में दो-चार अंडे हमेशा रखे रहते थे । अपने कमरे में अक्सर ही वे मनपसंद नाश्ता बनाकर लेती रही हैं, पर आज...

‘भाभी, आप शायद भूल गयीं कि आज हरितालिका है ।’ मैंने किमी तरह इतना कहा ।

‘नहीं नमिताजी, भूली तो नहीं हूँ । कुछ भी भूलने की सुविधा आपके यहां कहां है ?’

मैं प्रश्नार्थक दृष्टि से उनकी प्लेट को देखती रही ।

‘नाश्ते की बात सोच रही हो न । वह तो एक ‘एंटीडोट’ के रूप में ले रही हूँ । इस जन्म में जो सौभाग्य मिला है, उसे जन्म-जन्मांतर तक वहन करने की सामर्थ्य नहीं है मुझमें ।’

स्तब्ध रह गयी मैं । मन हुआ, वेडरूम में झांककर देख लूं, हरि भैया सुन तो नहीं रहे । भाभी ने किसी अंतर्गामी की तरह मेरे मन की बात पढ़ ली । हंसकर बोलों, ‘ननदरानी, क्यों अपने मन को बलेश दे रही हो । तुम्हारे भैया अस्सल सूर्यवंशी हैं । सूर्य जब तक सिर पर नहीं चढ़ आता, वे नहीं उठते । रातभर सड़कें नापने के बाद अभी-अभी तो सोये हैं बेचारे ।’

मुझसे यह निर्दय परिहास अधिक नहीं सुना गया । अपनी मुद्रा को यथाशक्ति कठोर बनाकर कहा, ‘मैं तो मौसी का संदेश देने के लिए आयी थी । ग्यारह बजे पंडितजी आयेंगे, आप तैयार होकर नीचे पहुंच जायें ।’

‘आ जायेंगे भाई, पूजा की फार्मेलिटी भी हो जाए, क्या फर्क पड़ता है । लेकिन नमिता, इस घर में वालूरेत के महादेव की इतनी प्रतिष्ठा क्यों है ! हमारी पूज्यनीया अम्माजी का अपने जीते-जागते महादेव के साथ जैसा...’

अधिक सुनना मेरी सामर्थ्य के बाहर था । बाहर आकर मैंने दरवाजा जोर से बंद कर लिया, ताकि आगे की बात मेरे कानों तक न पहुंचे ।

कमरे में आकर मैं सुन्न होकर बैठी रही । अभी शादी को दो साल भी नहीं हुए, भाभी में कितनी कड़वाहट आ गयी है । शादी होकर आयी थीं, तब

वे ऐसी नहीं थी। अपनी सजीली मुसकान से तब घर भर को एक उजास से भर देती थी वे। हरि भैया तब भी कितने खिले-खिले-से रहते थे।

लेकिन हथेली की मेंहदी भी न उतर पायी थी कि यह रंग उतरने लगा था। ये मुसकानें बुझने लगी थी।

और इसके लिए सिर्फ मौसी ही उत्तरदायी हैं। एक-दूसरे में खोया हुआ यह सारस का जोड़ा उन्हें फूटी आखो नहीं मुहाता था। दिनभर दरवाजो को देखकर वे क्रोध में मुनमुनाती रहती। कभी-कभी ऐसी बातें भी कह बैठती कि पास बैठो मैं शर्म से गड जाती।

एक दिन अकेले में मौसाजी ने मेरे हाथ में एक लिफाफा पकड़ाकर कहा था—'बिटिया ! हरि से कहो, कहीं घूम-घाम आये। घर में तो फिर सारी ज़िंदगी रहना ही है।'

'लेकिन यह है क्या ?'

'थोड़े से रुपये हैं, बेटा !' उन्होंने अत्यंत संकुचित होकर कहा था। मैं फिर ज्यादा कुछ नहीं पूछ सकी थी। अपनी छोटी-सी नौकरी में बड़े यत्न से जोड़ी हुई यह पूँजी उन्होंने बेटे की खुशी के नाम कर दी थी।

लेकिन खुशी मिली कहा ! हिम्मत करके हरि भैया ने गोवा घूमने का इरादा किया, तो घर में जैसे तूफान आ गया। एक तो उन्होंने अपने मन से ऐसा इरादा किया—मौसी को नाराज होने के लिए यही बहुत था। फिर मौसाजी के अनुदान ने तो आग में घी का काम किया था। बाप-बेटे दोनों ही एक साथ कटघरे में खड़े हो गये थे।

गोवा तो खर वे लोग गये ही, क्योंकि पहली बार मौसी को पति के दृढ़ निश्चय से टक्कर लेनी पड़ी थी। और वे हार गयी थी। लेकिन घूमने का आनंद निर्मल नहीं रह सका। लौटने पर भी प्रेमी-युगल का जैसा स्वागत हुआ, उससे बिखरे हुए हृदयों को पास आने का सबल नहीं जुट सका था।

शायद मौसी की सबसे ज्यादा ईर्ष्या उस प्रेम के आवेग से थी, जो उनके दांपत्य जीवन को कभी सराबोर नहीं कर सका। संभवतः इसीलिए उनका रुख धेंटे-बहू को लेकर इतना विकृत हो गया था।

लेकिन हमेशा निर्लिप्त रहने वाले मौसाजी इस विवाह के बाद घर में रस लेने लगे थे। मौसी का कोई वाक्-शर सीधा बहू पर न पड़े, इसके लिए



वे बड़े सजग रहते थे। बरसों बाद उनके स्वाभिमानी और निरीह व्यक्तित्व का मूल्यांकन हुआ था—बहू ने किया था। उनके कपड़े, उनका पूजाघर, उनकी पुस्तकें, उनका कमरा—बहू के सुघड़ हाथों के स्पर्श से दमकने लगे थे। जैसा अकृत्रिम स्नेह वे देते थे, वैसा ही प्रगाढ़ आदर उन्हें मिलता था। मुझे यह सब देखकर बड़ा अच्छा लगता था।

लेकिन इसके आगे भाभी का अधिकार नहीं था। शुरू-शुरू में उन्होंने बगीचे का कायाकल्प करना चाहा था, रसोई नये सिरे से जमानी चाही थी, ड्राइंगरूम की सजावट बदलने का प्रयास किया था, पर कहीं भी कुछ भी करने की अनुमति नहीं मिली। उनके साथ आया बहुमूल्य फर्नीचर भी उनके कमरे में कैद होकर रह गया था।

‘यह आकाशवाणी है...’ दूर कहीं से प्रसारक की जुकाम में भीगी आवाज़ आयी, तो मैं चौंकी। बाप रे ! आठ बज गये। ऊटपटांग बातों को सोचती रह गयी मैं और यहां कॉलेज का समय हो चला था। दनादन सीढ़ियां उतरकर नीचे आयी। रसोई में झांका, पूजा-पाठ से निवृत्त होकर मौसाजी पहली चाय ले रहे थे। मिसरानी काकी आज सुबह से ही मौसी की हाजिरी में थी। चाय उन्होंने खुद ही बनायी थी शायद।

‘प्लीज मौसाजी, फिफटी-फिफटी ! आपको मैं दोबारा बना दूंगी।’

‘आज तो बिटिया का उपवास होगा न ?’ उन्होंने मेरे मग में चाय उड़ेलते हुए पूछा।

‘सब छोड़-छाड़ दिया। दरअसल अब इन चीजों में बचपन की-सी आस्था नहीं रही।’ मैंने दोबारा चाय का पानी चढ़ाते हुए कहा। मौसाजी के सामने यह सब कहते हुए शिक्षक भी न हुईं। उनसे छिपा ही क्या था।

‘उड़ते-उड़ते खबर मिली है कि परसों तुम्हारी सगाई है। भई, मुबारक हो।’

‘अब मुझे थैक्यू भी कहना पड़ेगा। ठीक है न ?...वैसे मौसाजी, सबसे खुशी की बात तो यह है कि भैया इतने दिनों बाद घर आयेंगे।’

‘हां बिटिया, मनीष को देखे अरसा हो गया। तू तो कभी-कभार जाती भी रही है उसके पास, पर वहनजी तो तरस गयी होंगी।’

‘क्या कहने हैं चहनजी के ! इतना ही प्यार होता, तो क्या बात थी ?’  
मैंने बड़वाहट से भरकर कहा और विषय वहीं समाप्त कर दिया । आज  
मुबह-मुबह यह अच्छी खबर मिली थी और मैं खुश रहकर उसे ‘सेनिट्रेट’  
करना चाहती थी ।

पर कहते हैं न, मेरे मन कछु और है---

पूजा-सामग्री और दक्षिणा पोटली में घाघर पंडितजी ने दरवाजे के  
बाहर पेंर दिया ही होगा कि मौसी बरस पड़ी, ‘तीज-रंगोहार पर तो ढंग से  
पहन-ओड़ लिया करो । जिसके पास नहीं होता, वे लोग नकली गहने-गुरियों  
से घर भर लेती हैं । इनके पास हैं, तो ये दनिहर दिखाने में ही धन्य होती  
हैं ।’

चौकी के आसपास रागोली बनाती हुई भाभी का हाथ क्षणभर को  
काप गया, चेहरे की रेखाएँ कठोर हो आईं, पर दूसरे ही क्षण उनकी  
उंगलियाँ पूर्ववत् चलने लगी, जैसे कुछ हुआ ही नहीं । उनका यह पघरीला  
मौन ही मौसी को सहमा देता है । सामने खोलनेवाले को तो वे चुटकियों  
में उड़ा देती हैं ।

मैंने उस अप्रिय प्रसंग को समाप्त करते हुए कहा, ‘मा, भैया के लिए  
अपना कमरा खाली कर दूँ ? मैं तुम्हारे कमरे में आ जाऊँगी ।’

‘अरे, वह कौन-मा महीना भर रहने आ रहा है । कहीं भी पड़ रहेगा ।  
लेकिन दिल्ली वालों को कहा टिकार्ये । पता नहीं, कितने लोग है । हॉल  
में इंतजाम कर लें, या किसी हॉटल में ठहरा लें । क्यों, छोटी ?’

‘मुझसे क्या पूछती हो जीजी, घर का मालिक जाने और उनका काम  
जाने । अपन हुकुम के गुलाम हैं ।’ मौसी ने रखाई से कहा ।

‘बाह री, घर के मालिक तो गऊ-से सीधे हैं । वे कब हुक्म बनाते हैं ।  
मारा तो तुम पर सौंप रखा है । वेवारे अपने ठाकुरजी को लेकर मगन रहते  
हैं । कभी किसी काम में दखल नहीं देते ।’

‘तुम घर का मालिक किसे समझ रही हो, मौनू के मोमा को । बाह  
जीजी ! तुम्हारा भी जवाब नहीं है ।’ और मौसी विद्रूपभरी हमी हम  
उठी ।

‘तो क्या हरि के लिए कह रही है ? उसकी तो आठ-आठ दिन मुझे

सूरत ही नहीं दिखाई देती। पता नहीं, कहां रहता है। अच्छा, लीटें तो उससे कह देना, जल्दी से कुछ व्यवस्था कर ले। अब समय ज्यादा नहीं है।' मां का उत्साह देखकर मुझे खुशी हो रही थी।

‘हरि कुछ नहीं करेगा, जीजी!’

‘क्यों?’ मौसी के कंठस्वर से आशंकित होकर मां ने पूछा।

‘क्योंकि वह घर का मालिक नहीं है। घर का मालिक मनीष है। उसे आने दो, जैसा कहेगा, कर देंगे।’ मौसी ने जैसे दो-टूक बात कह दी।

‘तू हमेशा उल्टी बात करेगी, छोटी!’

‘इसमें उल्टा क्या है, जीजी। अपनी मर्जी का मालिक नहीं होता, तो क्या यूँ परभारे शादी तय करता। मैं तो खैर, कोई नहीं हूँ, पर तुमसे तो पूछ सकता था। बताओ भला, तुम्हें एक बार लड़का तो दिखा सकता था।’

ओह, अब समझी।

मैं सब कीन्ह तोहि विनु पूछे

तेहि ते परेउ मनोरथ छूछे।

वाली बात थी। मां का तो वहाना भर था। ठेस तो मौसी के अभिमान पर लगी थी। उनके सहज अधिकार की भैया ने सीधे उपेक्षा कर दी थी। इस अपराध को थोड़ा सौम्य बनाने की गरज से मैंने कहा, ‘पूछताछ की गुंजाइश थी ही कहां? तुम्हारी काली-कलूटी लड़की को किसी ने पसंद कर लिया, यही गनीमत थी। तुम लोग ठीक से देख-परख सको, इसीलिए तो यहां आ रहे हैं, नहीं तो यह प्रोग्राम भी रायपुर में नहीं हो सकता था क्या?’

‘पहले से कुछ पत्र तो देना चाहिए। एकदम तार ठोंक दिया।’ मौसी अब कुछ-कुछ नरम पड़ती जा रही थीं।

‘उन्हें विश्वास है तुम्हारी कार्यकुशलता पर, इसीलिए तो निश्चित हैं।’ मैंने मस्का मारा, ‘उन्हें विश्वास है कि सारी व्यवस्था ठीक-ठाक मिलेगी।’

‘व्यवस्था कौन बड़ी बात है। सगाई का क्या, मैं तो चार दिन में शादी खड़ी कर सकती हूँ। पर तेरे भैया से डर लगता है। पूरा सनकी सैनिक है। और जित्ती एक नंबर का। पाठक लोग पहली बार आये थे,

तब कैसा तमाशा किया था, याद है न !’

मैं सहम गयी। मौसी क्या सहज भाव से यह सब कह गयी थी। मैंने कनधियों से भाभी की ओर देखा। उनका गुलाबी चेहरा सफेद पड़ गया था। होंठ इतनी सख्ती से भिचे थे कि लगता था, अब खून ही आ जायेगा। स्मृति का वह अध्याय निश्चय ही किसी भी लड़की के लिए अपमानजनक था। वे कुछ देर ब्रुत बनीं वहीं रही और फिर एक झटके के साथ उठकर ऊपर को चल दी।

उनसे दृष्टि हटाकर मैंने मां को देखा। वे एकटक भाभी को देख रही थीं। उनकी आंखों में क्या था ? और मैं समझ गयी कि मौसी ने यह सब सहज भाव से नहीं कहा था। भाभी के स्वाभिमान को डंक मारने का चाहे उनका उद्देश्य न रहा हो, पर भैया के प्रति मां के मन में जहर घोलना उनका मतव्य था। यह काम योजनाबद्ध तरीके से वे बरमो से करती आ रही हैं। दर्जन भर लड़कियों में से सुलक्षणा को चुनने के पीछे भी नायब यही हेतु था। दिनभर वह मां के सामने इसी घर में रहेगी और मां कभी न भूल पायेगी कि मनीष ने उनके साथ क्या किया है।

दूसरे दिन सुबह-सुबह मौसी ने कहा, ‘मीता, भाभी से कहो कि जल्दी आरती कर ले, तो पूजा सिरा दें। बिना उसके गणेशजी कैसे विराजेंगे ?’

मैंने तुनककर कहा, ‘बार-बार मुझे उनके कमरे में मत भेजा करो, मौसी। अच्छा नहीं लगता।’ दरअसल मुझे उस कमरे में जाते डर लग रहा था। रात घनघोर बारिश होती रही थी। मैं पढ़ने का बहाना करके नीचे जागरण में भी शामिल नहीं हुई थी। अपने कमरे की साकल लगाकर चुपचाप पड़ रही थी। पर धद किवाड़ो को भेद कर भी बगलवाले कमरे की आवाजें अनचाहे सुनाई पड़ रही थीं। निश्चय ही वह प्रेमालाप नहीं था। भाभी को पहली बार मैंने इतनी ऊंची आवाज में बोलते हुए सुना था। बार-बार एक प्रश्न हवा में तैरता आ रहा था, ‘आखिर मुझे भी बताइए, इस घर में हमारी स्थिति है क्या ?’

क्या उत्तर दिया या हरि भैया ने, सुन नहीं पायी मैं।

जब रात ऐसी महाभारतवाली थी, तो सुबह का आलम पता नहीं

कैसा होगा, इसी से ऊपर जाना टाल गयी मैं ।

रतजगे के लिए मिसरानी काकी यहीं रुक गयी थीं । वे ही इस समय काम आयीं । बड़े उत्साह से ऊपर गयीं और कुछ ही देर में लौट आयीं ।

‘लाडी उजीन जा रही दीखै । कहै कि म्हारा दाजी वमार ह ।’

‘हरी !’ मौसी की धारदार आवाज घर में गूँजी ।

‘क्या है ?’ सीढ़ियों के सिरे पर खड़े होकर हरि भैया ने पूछा । पता नहीं, कितने दिनों बाद उन्हें देखा था । एक ही छत के नीचे रहते हुए हम लोग एक-दूसरे से हफ्तों नहीं मिल पाते थे । वे सोकर उठते, तब मैं कॉलेज जा चुकी होती । वे रात को लौटते, तब तक सारा घर सो चुका होता । जब-जब उन्हें देख पाती, हर बार लगता, वे पहले से अधिक संवला गये हैं, दुबला गये हैं । तब प्राणों में कैसी तो मरोड़ उठती...

‘बहू कहां जा रही है ?’ मौसी का प्रश्न मेरी विचारधारा को तोड़ गया ।

‘मैं क्या जानूँ । पूछ लो उसी से !’ हरि भैया ने सपाट स्वर में कहा ।

‘उसी से क्यों पूछूंगी, मैं तो तुझी से पूछूंगी ।’

‘ये आग का गोला मेरे पल्ले बांधने से पहले पूछा था ? अब क्यों पूछती हो ?’ और मुंह फेरकर वे वापस अपने कमरे में चले गये । उनके आरोप से जड़ बनी मौसी वहीं खड़ी रह गयीं ।

‘मैं भाभी साव के लिए रिक्शा लेने जा रहा हूँ ।’ मांगीलाल ने कहा और छाता लेकर सबके सामने निकल गया । मौसी फटी-फटी आंखों से देखती भर रह गयीं ।

घबराकर मैं पूजाघर की ओर दौड़ी । मनोयोग से चंदन घिसते हुए मौसाजी ‘मानस पूजा’ का पाठ कर रहे थे ।

‘मौसाजी ! जरा बाहर आइए, जल्दी से । भाभी पता नहीं क्यों, एकदम उज्जैन चली जा रही हैं । आप कहेंगे, तो रुक जायेंगी । आपका बहुत आदर करती हैं । आपकी बात नहीं टालेंगी ।’

किंतु वे वैसे ही बैठे रहे ।

‘चलिए न !’ मैंने व्यग्रता से कहा ।

‘यह तुमसे किसने कह दिया कि वह मेरा आदर करती है । उम जैभी मनस्विनी का आदर पाने के योग्य मैं कहा हूँ । वह सिर्फ मुझ पर दया करती है ।’

उस समय यह सारी चर्चा इननी निरर्थक मालूम हो रही थी ।

‘हरि कहाँ है ?’

‘अपने कमरे में ।’

‘रोकना अगर चाहें, तो वही उसे रोक सकता है । चाहे प्यार से, चाहे अधिकार से । मेरे कहने का कोई मतलब नहीं निकलता...’

रिक्शा रुकने की आवाज आयी और मैंने हताश होकर ऊपर देखा । बाँहों पर रैनकोट और हाथ में सूटकेस लेकर भाभी उतर रही थी ।

लेकिन दरवाजे के भीतर जिसने प्रवेश किया, वह मागीलाल नहीं था, वे भैया थे । आते ही चिल्लाये, ‘गुडमॉनिंग, एवरीवडी ।’

‘मा, भैया आये हैं !’ मैंने खुशी से किलककर कहा और उनके कंधे से झूल गयी । मा और मौसी दौड़ी आयी और हम तीनों-चारों प्यार के सैलाब में बह-से गये । सीढ़ियों पर बुरत बनी खड़ी भाभी की ओर किसी का ध्यान नहीं गया ।

‘भाभीजी, रिक्शा आ गया ।’ मागीलाल ने एकदम आकर कहा और तब हमें होश आया ।

‘किसके लिए रिक्शा आया है ? मुलझणा के लिए ? क्यों ? कहाँ जा रही है ?’ भैया ने जैसे प्रश्नों की शशी लगा दी ।

‘उज्जैन जा रही है ।’

‘क्यों ? कोई खास बात ?’

‘नहीं...ऐसे ही...पिताजी से मिलने जा रही हैं ।’ मैंने यत्नपूर्वक कहा ।

‘तब तो वह रुक सकती है । यह फक्कन हो जाये, फिर मैं खुद जाकर उसे छोड़ आऊंगा । मागीलाल, यह रुपया दे और रिक्शा लौटा दे ।’

दूसरे ही क्षण भाभी के कमरे का दरवाजा इतनी जोर से बंद हुआ कि मैं काप उठी । सोचा, भैया से कह दू—‘उन्हें जाने दो । जबरदस्ती किस

को रोकने में क्या तुक है।’

लेकिन आते ही सारी रामायण सुनाकर उन्हें परेशान करने की इच्छा नहीं हुई।

लेकिन इतना सत्र शायद औरों से नहीं हो सका था।

शाम को भैया ने कहा, ‘चल मीतू, थोड़ा घूम आएँ।’

बरसात में इंदौर घूमने लायक कतई नहीं रह जाता, पर भैया साथ थे, इसलिए सब-कुछ सुहावना लग रहा था। ओवर ब्रिज पार कर हम लोग ‘आइडियल’ में जाकर बैठ गये। और स्थानों की अपेक्षा यहीं थोड़ा एकांत था। भैया शायद इसके लिए तरस गये थे। ऑर्डर दे चुकने के साथ ही बोले, ‘अब थोड़ा चैन आया। घर में तो जरा भी प्रायवेसी नहीं है। कहने को इतनी बड़ी कोठी है।’ फिर थोड़ा रुककर बोले, ‘मीता ! हरि को क्या हो गया है ?’

‘क्यों ?’

‘नहीं, मुझे लगा कि सब-कुछ ठीक-ठाक नहीं है, खासकर उसकी पत्नी। मौसी बता रही थीं कि उसका व्यवहार एकदम...’

‘वह बिल्कुल ठीक हैं, वस भ्रांति की शिकार हुई हैं और यही सारे असंतोष की जड़ है। जो सब्जवाग उन्हें दिखाये गये थे, सब-के-सब नकली थे।’

‘फैक्टरी का क्या हुआ ?’

‘अभी चल रही है, जैसे-तैसे। पर हरि भैया वहां हफ्तों तक झांकते भी नहीं। दिनभर पता नहीं कहां-कहां भटकते रहते हैं। रात गये घर लौटते हैं। अजीब-अजीब-से दोस्त पाल रखे हैं।’

‘वेचारा ! दरअसल वह लड़का विजनेस के लायक था ही नहीं। वैसी सामर्थ्य उसके पास नहीं है। इससे तो कहीं नौकरी में लग जाता, तो ठीक रहता।’ भैया के स्वर में सहानुभूति का पुट था।

‘उनकी अम्मा की महत्वाकांक्षाओं का भी तो पार नहीं है।’ मैंने कड़वाहट से कहा।

‘यही तो रोना है। बीबी से भी तो उसका स्वभाव मेल नहीं खाता।’

उसे तो कोई घरेलू लड़की ही सूट करती। लेकिन यह काफी महत्वाकांक्षी है। पता है, उसने हरि से कहा है कि अब वह दूसरों की छत के नीचे नहीं रहेगी।'

कल का सारा इतिहास मेरी आंखों के सामने घूम गया। मैंने हीले से पूछा, 'आपने कैसे जाना?'

'मोसी ने ही बताया है...और भीता, एक बात मेरे मन में आयी है।'  
'क्या?'

'तुम्हें अगर कोई आपत्ति न हो, तो यह मकान मैं हरि के नाम करना चाहता हूँ...अर्थात् तुम्हारी शादी के बाद।'

दर का एक बड़ा-सा घूट मेरे गले में अटक गया। बरबस अपने आंखों से रोते हुए मैंने पूछा, 'और मा?'

'मां मेरे पास रहेंगी। किमी-न-किमी दिन तो उन्हें यह फैसला करना ही पड़ेगा। जितनी जल्दी कर लें, उतना अच्छा है।'

'उनसे पूछ लिया है?'

'हां, एक तरह से यह प्रस्ताव उन्हीं की ओर से आया है।'

'पता नहीं, मा यह किम जन्म का कर्ज उतारती जा रही हैं।' मैंने सड़पकर कहा, 'आपको इस तरह बेघर करने का उन्हें क्या हक है?'

'जिस दिन पापा की मृत्यु हुई थी भीता, बेघर तो मैं उसी दिन हो गया था। यह घर कभी मेरी आत्मा को स्वीकार नहीं हुआ। इसके साथ जुड़ी हुई सारी स्मृतियाँ उदास कर आती हैं...सिवा तरे।' और उन्होंने मेरे माथे को प्यार से थपकिया दिया, 'और यह मत भूलो भीता, कि यदि मोसी जीवन की बाजी जीत गयी होती, तो यह घर आज उन्हीं का होता। मैं और मां आश्रय के लिए शायद उन्हीं का मुह जोहते होते।'

'भीया, आप...आप भी यह सब जानते हैं?' मैंने अस्फुट स्वर में कहा।

'हां भीता, और दुःख की बात तो यह है कि यह सब मैं अपने आप जान गया। कितनी छोटी आयु में मैंने घर के वातावरण से इस कहानी के बीज चुन लिये थे। मा ने पापा को कभी धमा नहीं किया था। उनकी इस इफलोती भूल का वे किसी अमोघ अस्थ की तरह समय-असमय प्रयोग



को रोकने में क्या तुक है ।’

लेकिन आते ही सारी रामायण सुनाकर उन्हें परेशान करने की इच्छा नहीं हुई ।

लेकिन इतना सब शायद औरों से नहीं हो सका था ।

शाम को भैया ने कहा, ‘चल मीतू, थोड़ा घूम आएँ ।’

बरसात में इंदौर घूमने लायक कतई नहीं रह जाता, पर भैया साथ थे, इसलिए सब-कुछ सुहावना लग रहा था । ओवर ब्रिज पार कर हम लोग ‘आइडियल’ में जाकर बैठ गये । और स्थानों की अपेक्षा यहीं थोड़ा एकांत था । भैया शायद इसके लिए तरस गये थे । ऑर्डर दे चुकने के साथ ही बोले, ‘अब थोड़ा चैन आया । घर में तो जरा भी प्रायवेसी नहीं है । कहने को इतनी बड़ी कोठी है ।’ फिर थोड़ा रुककर बोले, ‘मीता ! हरि को क्या हो गया है ?’

‘क्यों ?’

‘नहीं, मुझे लगा कि सब-कुछ ठीक-ठाक नहीं है, खासकर उसकी पत्नी । मौसी बता रही थीं कि उसका व्यवहार एकदम...’

‘वह विलकुल ठीक हैं, बस भ्रांति की शिकार हुई हैं और यही सारे असंतोष की जड़ है । जो सब्जवाग उन्हें दिखाये गये थे, सब-के-सब नकली थे ।’

‘फैक्टरी का क्या हुआ ?’

‘अभी चल रही है, जैसे-तैसे । पर हरि भैया वहां हफ्तों तक झांकते भी नहीं । दिनभर पता नहीं कहां-कहां भटकते रहते हैं । रात गये घर लौटते हैं । अजीब-अजीब-से दोस्त पाल रहे हैं ।’

‘बेचारा ! दरअसल वह लड़का विजनेस के लायक था ही नहीं । वैसी सामर्थ्य उसके पास नहीं है । इससे तो कहीं नौकरी में लग जाता, तो ठीक रहता ।’ भैया के स्वर में सहानुभूति का पुट था ।

‘उनकी अम्मा की महत्वाकांक्षाओं का भी तो पार नहीं है ।’ मैंने कड़वाहट से कहा ।

‘यही तो रोना है । बीबी से भी तो उसका स्वभाव मेल नहीं खाता ।

उसे तो कोई धरेलू लड़की ही सूट करती । लेकिन यह काफी महत्वाकांक्षी है । पता है, उसने हरि से कहा है कि अब वह दूसरों की छत के नीचे नहीं रहेगी ।’

कत का सारा इतिहास मेरी आँखों के सामने घूम गया । मैंने हौले से पूछा, ‘आपने कैसे जाना ?’

‘मौनी ने ही बताया है...और भीता, एक बात मेरे मन में आयी है ।’  
‘क्या ?’

‘तुम्हें अगर कोई आपत्ति न हो, तो यह मकान मैं हरि के नाम करना चाहता हूँ...अर्थात् तुम्हारी शादी के बाद ।’

दई का एक बड़ा-सा घूट मेरे गले में अटक गया । बरबस अपने आँसू रोकते हुए मैंने पूछा, ‘और मा ?’

‘मा मेरे पास रहेगी । किसी-न-किसी दिन तो उन्हें यह फैसला करना ही पड़ेगा । जितनी जल्दी कर लें, उतना अच्छा है ।’

‘उनसे पूछ लिया है ?’

‘हां, एक तरह से यह प्रस्ताव उन्हीं की ओर से आया है ।’

‘पता नहीं, मा यह किस जन्म का कर्ज उतारती जा रही हैं ।’ मैंने तड़पकर कहा, ‘आपको इस तरह बेघर करने का उन्हें क्या हक है ?’

‘जिस दिन पापा की मृत्यु हुई थी भीता, बेघर तो मैं उसी दिन हो गया था । यह घर कभी मेरी आत्मा को स्वीकार नहीं हुआ । इसके साथ जुड़ी हुई सारी स्मृतियाँ उदास कर जाती हैं...सिवा तेरे ।’ और उन्होंने मेरे माथे की प्यार से थपकिया दिया, ‘और यह मत भूलो भीतू, कि यदि मौसी जीवन की बाजी जीत गयी होती, तो यह घर आज उन्हीं का होता । मैं और मां आश्रय के लिए शायद उन्हीं का मुह जोहते होते ।’

‘भैया, आप...आप भी यह सब जानते हैं ?’ मैंने अस्फुट स्वर में कहा ।

‘हां भीता, और दुःख की बात तो यह है कि यह सब मैं अपने आप जान गया । कितनी छोटी आयु में मैंने घर के वातावरण से इस कहानी के बीज चुन लिये थे । मा ने पापा को कभी क्षमा नहीं किया था । उनकी इस इकलौती भूल का वे किसी अमोघ अस्त्र की तरह समय-अमय प्रयोग

को रोकने में क्या तुक है ।’

लेकिन आते ही सारी रामायण सुनाकर उन्हें परेशान करने की इच्छा नहीं हुई ।

लेकिन इतना सब शायद औरों से नहीं हो सका था ।

शाम को भैया ने कहा, ‘चल भीतू, थोड़ा घूम आएं ।’

बरसात में इंदौर घूमने लायक कतई नहीं रह जाता, पर भैया साथ थे, इसलिए सब-कुछ सुहावना लग रहा था । ओवर ब्रिज पार कर हम लोग ‘आइडियल’ में जाकर बैठ गये । और स्थानों की अपेक्षा यहीं थोड़ा एकांत था । भैया शायद इसके लिए तरस गये थे । ऑर्डर दे चुकने के साथ ही बोले, ‘अब थोड़ा चैन आया । घर में तो जरा भी प्रायवेसी नहीं है । कहने को इतनी बड़ी कोठी है ।’ फिर थोड़ा रुककर बोले, ‘भीता ! हरि को क्या हो गया है ?’

‘क्यों ?’

‘नहीं, मुझे लगा कि सब-कुछ ठीक-ठाक नहीं है, खासकर उसकी पत्नी । मौसी बता रही थीं कि उसका व्यवहार एकदम...’

‘वह विलकुल ठीक हैं, वस भ्रांति की शिकार हुई हैं और यही सारे असंतोष की जड़ है । जो सब्जवाग उन्हें दिखाये गये थे, सब-के-सब नकली थे ।’

‘फैवटरी का क्या हुआ ?’

‘अभी चल रही है, जैसे-तैसे । पर हरि भैया वहां हफ्तों तक झांकते भी नहीं । दिनभर पता नहीं कहां-कहां भटकते रहते हैं । रात गये घर लौटते हैं । अजीब-अजीब-से दोस्त पाल रखे हैं ।’

‘वेचारा ! दरअसल वह लड़का विजनेस के लायक था ही नहीं । वैसी सामर्थ्य उसके पास नहीं है । इससे तो कहीं नौकरी में लग जाता, तो ठीक रहता ।’ भैया के स्वर में सहानुभूति का पुट था ।

‘उनकी अम्मा की महत्वाकांक्षाओं का भी तो पार नहीं है ।’ मैंने कड़वाहट से कहा ।

‘यही तो रोना है । बीबी से भी तो उसका स्वभाव मेल नहीं खाता ।’

उसे तो कोई धरेलू लड़की ही मूट करती। लेकिन यह काफी महत्वाकांक्षी है। पता है, उसने हरि से कहा है कि अब वह दूसरों की छत के नीचे नहीं रहेगी।'

कल का सारा इतिहास मेरी आँखों के सामने घूम गया। मैंने होले से पूछा, 'आपने कैसे जाना?'

'मौसी ने ही बताया है... और मौता, एक बात मेरे मन में आयी है।'

'क्या?'

'तुम्हें अगर कोई आपत्ति न हो, तो यह मकान मैं हरि के नाम करना चाहता हूँ... अर्थात् तुम्हारी आदी के बाद।'

दरवाज़े का एक बड़ा-मा घूट मेरे गले में अटक गया। बरबस अपने आँसू रोकते हुए मैंने पूछा, 'और मा?'

'मां मेरे पास रहेंगी। किसी-न-किसी दिन तो उन्हें यह फैसला करना ही था। जितनी जल्दी कर लें, उतना अच्छा है।'

'उनसे पूछ लिया है?'

'हां, एक तरह से यह प्रस्ताव उन्हीं की ओर से आया है।'

'पता नहीं, मा यह किस जन्म का कर्ज उतारती जा रही हैं।' मैंने सड़पकर कहा, 'आपको इस तरह बेघर करने का उन्हें क्या हक है?'

'जिस दिन पापा की मृत्यु हुई थी मौता, बेघर तो मैं उसी दिन हो गया था। यह घर कभी मेरी आत्मा को स्वीकार नहीं हुआ। इसके साथ जुड़ी हुई सारी स्मृतियाँ उदास कर जाती हैं... सिवा तरे।' और उन्होंने मेरे माथे को प्यार से थपकिया दिया, 'और यह मत भूलो मौतू, कि यदि मौसी जीवन की याजी जीत गयी होती, तो यह घर आज उन्हीं का होता। मैं और मां आश्रय के लिए शायद उन्हीं का मुह जोहते होते।'

'भैया, आप... आप भी यह सब जानते हैं?' मैंने अस्फुट स्वर में कहा।

'हां मौता, और दुःख की बात तो यह है कि यह सब मैं अपने आप जान गया। कितनी छोटी आयु में मैंने घर के वातावरण से इस कहानी के बीज चुन लिये थे। मा ने पापा को कभी धमा नहीं किया था। उनकी इस इकलौती भूल का वे किसी अमोघ अस्त्र की तरह समय-असमय प्रयोग

करती रहीं। पापा बेचारे तब कितने असहाय नज़र आते थे।'

‘सच कह रहे हैं?’

‘हां, सच ही तो कह रहा हूं। और वह एक दिन तो आज भी ज्यों-क्यों मेरे मन में अंकित है। उस दिन ड्राइवर नहीं आया था। पापा सिरदर्द के कारण आफिस से जल्दी लौट आये थे। मां चाहती थीं कि वे सुनीता को स्कूल से लिवा लाएं। पापा कह रहे थे, स्कूल में फोन कर दो, किसी के भी साथ चली आयेगी।

‘वस, इसी जरा-सी बात को मां ने इतना तूल दे दिया। क्या-क्या तो कह डाला। पिछले सारे आरोपों को फिर से दोहरा गयीं वे। कह डाला कि बच्चों के प्रति उनमें जरा भी ममता नहीं है।...मजबूर होकर पापा ने गैरेज से गाड़ी निकाली थी और वे सुनीता को लिवाने चले गये थे... और स्कूल से लौटा था उनका और सुनीता का छिन्न-विच्छिन्न शरीर।’

सिहरकर मैंने दोनों हाथों से मुंह ढांप लिया। स्मृति की क्षीण रेखाएं कल्पना के सहारे कैसे-कैसे चित्र बनाने लगी थीं।

‘रोओ मत, मीता। अब यह विसरा हुआ अतीत है।’ भैया ने खुरदरे स्वर में कहा। मैंने भीतर-ही-भीतर अपने आंसू सोख लिये। एक गहरा मौन हम दोनों के बीच फैल गया।

‘मां शायद अपने को अब तक क्षमा नहीं कर सकी हैं...बेचारी।’ कुछ देर बाद काँफी सिप करते हुए मैं कह रही थी।

‘हां, और यह पछतावा उनके साथ जीवन भर रहेगा।’

‘अन्याय तो मां के साथ भी कम नहीं हुआ था। पर परिस्थितियां सारा दोष उन्हीं के सिर मढ़ गयी हैं।’ मैंने मां के प्रति आर्द्र होते हुए कहा।

‘अन्याय तो हुआ था, पर उन्होंने जिस तरह पापा को सताया, वह भी कम भयानक नहीं था। अगर क्षमा नहीं कर सकती थीं, तो उन्हें रास्ते से हट जाना चाहिए था। कम-से-कम वे दो प्राणी तो सुख से जी लेते... मैं तो हैरान हूं, मौसी भी अपने मन की आवाज़ क्यों नहीं सुन सकीं। इस अनमेल विवाह से तो एकाकी जीवन कहीं अधिक अच्छा होता। कम-से-कम उस जीवन में शांति तो होती, सुकून तो होता।’

‘अकेले रह लेना क्या इतना सरल है, भैया ? हम लोगों को इतनी आजादी कौन देता है ! विवाह भी कई बार एक विवशता बन जाता है...’ कहते-कहते मेरा कंठ इतना भीग उठा कि भैया मुझे देखते रह गये । उनकी पारदर्शी आंखें मेरे भीतर तक उतर आयीं । एकाएक मेरे दोनों कंधे पकड़कर बोले, ‘सच कहना, भोता—क्या तुम हरि को लेकर भावुक रही हो ?’

क्या उत्तर था मेरे पास ?

‘तुमने मुझसे कभी कुछ कहा क्यों नहीं, पगली ! वहां मैं अपनी घर-गृहस्थी में खोया रहा और यहां तुम अपने आप में इस तरह धुलती रही...क्या कभी क्षमा कर पाऊंगा मैं अपने आप को ?’

‘जो भी हो भैया, हम लोग यह विषय समाप्त नहीं कर सकते । प्लीज ।’ और यह कहते हुए मेरा स्वर कांप-कांप गया ।

‘विषय तो सचमुच समाप्त कर ही देना है । बीते हुए को साथ घसीटने से सिर्फ दुःख ही हाथ आता है और उसकी आंच तुम्हारे हमराही को भी लग सकती है । यह अन्याय तुम कभी मत करना, क्योंकि इसकी विभीषिका तुम रोज देख रही हो । मेरे लिए इतना करोगी न, भोता ?’

भैया मेरे सिर पर धीरे-धीरे हाथ फेर रहे थे । जीवन में पहली बार लगा कि मैं अनाथ नहीं हूं, मेरे सिर पर भी पिता का छत्र है ।

सगाई का मुहूर्त तो शाम का निकला था, पर पंचमी के दिन सुबह से ही घर में बहल-पहल हो गयी थी । नौकरों को दम मारने की फुसंत नहीं थी—कभी मौसी और कभी भैया की पुकार पर इधर-उधर दौड़ रहे थे । भैया की दौड़-धूप का तो अंत ही नहीं था । निमत्तणों से लेकर विछायतकी व्यवस्था तक—सब उनके जिम्मे था । मौसी भी कम व्यस्त नहीं थी । भैया ने बड़ी चतुराई से सर्वाधिकार उन्हे सौंप कर खुश कर दिया था । आश्चर्य तो यह था कि मां भी छिटपुट कामों में हाथ बंटा रही थी । करने को इतना मारा काम था, पर संकोच के मारे मुझसे कुछ करते नहीं बन रहा था । और सब ओर से आख मूंदकर कमरे में बैठना भी अच्छा नहीं लग रहा था । इसीलिए मॅटी का टेबल क्लॉथ लेकर बही धरामदे मे बैठ

गयी थी ।

भैया हॉल में विछायत लगवा रहे थे । मिसरानी काकी के वच्चे गुद्वारे फुलाने का काम बड़े शौक से कर रहे थे ।

‘मनीष ?’ एकाएक मौसी ने दरवाजे में खड़े होकर कहा, ‘यह तूने क्या किया ?’

‘क्यों ? क्या हुआ ?’

‘यह कालीन इस कोने में क्यों लगा दिया ? लड़की का मुंह दक्षिण को हो जायेगा न ।’

‘अब यह उत्तर-दक्षिण मुझे नहीं आता, मौसी । तुम लोगों से कहता हूं, पांच मिनट यहां खड़ी रहो, तो पता नहीं अंदर क्या करने लग जाती हो । अब यह काम होने तक यहां से जाना नहीं ।’

‘अंदर कितना काम पड़ा है भैया । टेंट हाउस से फ्रॉकरी आकर पड़ी है, उसे पोंछना है । मिठाइयों की पेटियां खोलनी हैं, थाल जमाना है, पंडितजी का सामान तैयार करना है...’

‘घर में बहू के होते हुए तुम इन छोट-मोटे कामों में सिर क्यों खपाती हो ?’

‘क्या कहने हैं ! एक बार नीचे उतरकर झांका भी है उसने ।’

‘अच्छा ! मौतू, भाभी को बुलाकर तो ला ।’ भैया ने कहा तो इतना गुस्सा आया मुझे ।

‘मैं सुबह से यहां फालतू बैठी हूं । मुझसे कोई काम करवाइए न आप लोग । मैं नहीं बुलाने जाऊंगी किसी को ।’ मैंने तुनककर कहा ।

‘ठीक है, तो मैं जाता हूं ।’ और सचमुच वे दनादन सीढ़ियां चढ़कर चले गये । बड़ी मुश्किल से उनके साथ-साथ पहुंच पायी मैं ।

‘भाभी !’ मैंने जल्दी से उनके कमरे में जाकर कहा, ‘आपको नीचे बुला रहे हैं !’

‘कौन बुला रहे हैं ?’ उन्होंने उपन्यास से सिर उठाकर बेफिक्री से पूछा ।

‘मैं बुला रहा हूं ।’ दरवाजे के बाहर से भैया का दबंग स्वर आया, तो हम दोनों ही क्षणभर को सकपका गयीं ।

‘शाम को मीठू की सगाई का कार्यक्रम है। तीन बजे तैयार होकर तुम नीचे आ जाना। और अभी अगर मौसी चाहें, तो उनका भी हाथ बंटा लो।’ इतना कहकर भैया नीचे जाने के लिए उतर चुके थे कि भाभी तेजी से बाहर आयीं और बोली—‘यह मालिक मकान का आदेश है?’

‘हां, आदेश ही समझ लो। मालिक न सही, घर का बड़ा लड़का तो मैं हूँ।’ बड़ी सहजता से भैया ने कहा और नीचे उतर गये।

बाद का नाटक देखने की मेरी इच्छा नहीं थी, इसलिए मैंने कमरे में अपने को बंद कर लिया। नियोजित वर महोदय की तसवीर को सामने रखकर देखती रही, उसे मन में उतारने का प्रयास करती रही। पता नहीं, कब भैया इसे कमरे में रख गये थे।

ढाई बजे से ही मा-मीसी मुझे तैयार करने का मंकल्प ले बैठी। कभी जूड़ा, कभी चोटी, कभी डोली, कभी कसी—ऊह, किसी तरह संतोष नहीं हो रहा था। मा ने अपने तीनों-चारों सेट निकालकर रख दिये थे। दोनों ने अपनी कीमती और चटख साड़ियों का मेरे सामने अंवार लगा दिया था। दोनों बहनें ‘चंपई वरन’ की थीं। ये साड़ियां उन पर सचमुच फबती थीं, पर मेरा नाम तो कॉलेज में ‘ग्लैंक रोज ऑफ अफ्रीका’ पड़ा हुआ था, यह उन्हें कैसे समझाती। उन साड़ियों की ओर तो झाकते भी डर लगता था। मा का तो सारा वार्डरोब ही पुराने फैशन का था। बरसों बंद रहने के कारण उन कपड़ों में अजीब-सी गंध भर गयी थी।

भैया किसी काम से अदर आये, तो मैंने याचना की दृष्टि से उनकी ओर देखा। वे मेरी परेशानी समझ गये और खुद उस ढेर को उलट-पलट करने लगे।

तभी सुगंध का एक झोंका-सा भीतर आया और उसके साथ ही यह प्रश्न भी—‘मेरे लिए क्या आज्ञा है?’

हम सभी की आखें एक साथ दरवाजे की ओर उठ गयीं। वहां जैसे महालक्ष्मी की अलंकृत प्रतिमा ही उतर आयी थी। नाजुक जरी वर्क की साड़ी में भाभी को पहली बार देखा था। पिछली दीवारों पर यह उनके



पीहर से आयी थी, पर एक बार भी उन्होंने पहनी नहीं थी। एक अजीब-सा विराग उन पर आ गया था। पहनने-औड़ने का कोई शौक ही नहीं रहा था। महीनों उनके चेहरे पर मेकअप की हल्की-सी पर्त भी दिखाई नहीं देती थी।

पर आज जैसे उन्होंने सारी कसर निकाल ली थी। गर्वोन्नत मुद्रा में द्वार पर खड़ी वे पलभर को सबको अभिभूत कर गयी थीं।

उनके इस आयोजन को सार्थक करते हुए सबसे पहले भैया ने ही सहज स्वर में कहा, 'वाह, इसे कहते हैं तैयार होना। सुलक्षणा, अब जरा मीठू को संभालो तो। ये दोनों वहनें तो उसका कार्टून बनाने पर तुली हुई हैं।'

इतना कहकर जब वे बाहर चले गये, तो लगा, मैं एकदम अजनबी हाथों में सौंप दी गयी हूँ।

चार दिन पता नहीं कैसे फुर्र-से उड़ गये और भैया के जाने का दिन आ पहुँचा। मैं भारी मन से उनके आस-पास ही मंडरा रही थी। सोच रही थी उनके साथ का एक भी क्षण व्यर्थ न जाने दूंगी।

'आपने बुलाया था?' दरवाजे के बाहर खड़े होकर भाभी ने कुछ इस अंदाज में पूछा, जैसे उन्हें बुलाकर कोई अपराध किया गया है।

'आओ सुलक्षणा, बैठो। कुछ जरूरी बातें करनी थीं तुमसे।'

भाभी भीतर तो आ गयीं, पर बैठी नहीं। दीवार के सहारे खड़ी ही रहीं, मानो कह रही हों—जो कुछ कहना है, जल्दी से कह-सुन लीजिए।

'मैं तुम्हें एक जिम्मेवारी सौंपना चाह रहा हूँ। दहेज का सारा सामान तुम लोगों को ही खरीदना है। मैं तो विलकुल समय पर ही आ पाऊंगा। मां और मौसी के भरोसे यह काम नहीं छोड़ सकता। ऊटपटांग सामान खरीदकर घर भर देंगी... ये अभी कुछ रुपये रख लो। जाते ही और भेज दूंगा।'

भैया ने उनकी ओर लिफाफा बढ़ाया भी, पर वे उसे अनदेखा कर काठ की तरह खड़ी ही रह गयीं।

‘सुलक्षणा ! क्या सोच रही हो ?’

‘आप यह काम उन्हें नहीं सौंप सकते थे ?’ भाभी ने सीधे उनकी आंखों में देखते हुए पूछा, ‘या आप भी उन्हें किसी लायक नहीं समझते ?’

उनके स्वर की तल्खी परेशान कर देनेवाली थी, पर भैया ने बड़े ही शांत स्वर में कहा, ‘चाहता तो यही था। पर तुम्हारे ‘उन’ का पता-ठिकाना कहा से पाऊंगा। मुझे तो शक है, तुम्हें भी उसके बारे में कुछ नहीं पता।’

भाभी के पास कोई उत्तर नहीं था।

‘आया था, उस दिन सिर्फ एक झलक उसकी देखी थी...और देख-कर खुशी नहीं हुई थी। चाहता था, पास बिठाकर कुछ बात करूंगा, लेकिन उसके पास शायद फालतू बातों के लिए समय नहीं है। ठीक है न ?’ और फिर एकाएक गंभीर स्वर में बोले भैया, ‘मैं तुमसे बहुत नाराज हूँ, सुलक्षणा।’

भाभी की बड़ी-बड़ी आंखें प्रश्न बनकर फैल गयीं।

‘अपनी गृहस्थी का यह कैसा मजाक बना डाला है तुमने। हरि किस रास्ते से जा रहा है, कुछ पता भी है तुम्हें। या तुमने कभी सोचने की आवश्यकता ही नहीं समझी ?’

उत्तर में भाभी के होठ सस्ती से भिच गये। मुझे वहां बैठना अजीब-सा लगने लगा। उठकर चला जाना शायद और भी अशोभन लगता। मैं बेमतलब भैया के सूटकेस को उलट-पलट करती रही।

‘विवाह कोई वच्चों का खेल तो नहीं है। तुम्हारी बेरुखी देखकर मुझे हैरत होती है।’ भैया ने फिर कहा, ‘विवाह से पहले तुमने इन दायित्वों के बारे में सोचा तो होगा।’

और भाभी जैसे एकदम फट पड़ी, ‘सोचा क्यों नहीं था, लेकिन विवाह किया था मैंने एक पुरुष के साथ; तब यह नहीं सोचा था कि जिसका वरण कर रही हूँ, वह मात्र खूब का एक बच्चा है, जिसके पास न अपनी कोई संवेदनाएं हैं, न आस्थाएं, न आकांक्षाएं। वह न डग से प्रेम कर सकता है, न धृणा। इस तरह धून्य में कितने दिन जिया जा सकता है, बतायेंगे ?’

उनके प्रबल भावावेग के सामने हम लोग एकदम स्तब्ध रह गये थे।

कुछ समय बाद भैया ने स्नेहसिक्त स्वर में कहा, 'मनुष्य का स्वभाव अपने आप नहीं बन जाता, सुलक्षणा! उसका भी एक इतिहास होता है। हरि का वचन बहुत सुखद परिस्थितियों में नहीं बीता है। हो सकता है, कुछ ग्रंथियां उसके मन में हों...लेकिन यह कोई इतना बड़ा कारण नहीं है कि तुम्हें घर छोड़कर जाना पड़े, बल्कि उसे तो तुम्हारी सहानुभूति की जरूरत है।'।

'पूजनीय भाई साहब, मैं कोई फिल्मी हीरोइन नहीं हूँ, जो हमेशा के लिए घर छोड़कर चली जाती।' भाभी का व्यंग्य-भरा स्वर तिलमिला देने वाला था, 'मैं सिर्फ देखना चाहती थी कि उनकी आत्मा में कोई चिनगारी शेष है या नहीं। वे मेरा हाथ पकड़कर मुझे रोक सकते थे। अगर क्रोध में आकर मेरा रास्ता रोक लेते, तब भी मुझे खुशी होती। लेकिन उनकी मानसिक जड़ता इस हद तक पहुंच चुकी है कि वे टुकुर-टुकुर देखते रह गये।...और आप चाहते हैं कि मुझे उनसे सहानुभूति होनी चाहिए। खैर, आपके उपदेशामृत के लिए आभारी हूँ। आशा है, दूसरों को अपनी ज़िदगी जीने की सुविधा भी कभी-कभी देते रहेंगे।'।

भाभी निमिष भर में कमरे से अलोप हो गयीं। पर उनके दर्प भरे अस्तित्व का बड़ी देर तक भान होता रहा। और एकाएक मुझे भान हुआ कि वे भैया का कितना बड़ा अपमान कर गयी हैं। रोप में भरकर मैंने कहा, 'आपको क्या जरूरत थी उस पचड़े में पड़ने की। उन्होंने कभी किसी की बात मानी भी है आज तक। हरि भैया उन्हें आग का गोला कहते हैं।'।

'आग का गोला! सचमुच यह तो भभकता हुआ ज्वालामुखी ही है। पता है, उसे मैंने क्यों बुलाया था। मैं घर के बारे में भूमिका वांधना चाहता था, पर हिम्मत ही नहीं हुई। उसका इतना बड़ा अपमान करने का साहस नहीं बन पड़ा मेरा।' भैया गंभीर होकर बोले।

'इसमें अपमान भला क्या होता! बल्कि...' 'तू समझती नहीं है, मीतू। उसकी जाति के लोग दान-पत्रों से अपमानित ही होते हैं।'।

'मीतू!'

भैया को सी-ऑफ करके लौटने के बाद, अपने कमरे में बैठी मैं

चुपचाप आंखें बंद कर रही थी। भाभी की आवाज सुनकर चौंक पड़ी। वे मेरे पास ही पलंग पर आकर बैठ गयी थी। उस अनजाने सामीप्य से ही याद आया कि उन्होंने हमेशा की तरह 'नमिता जी' कहकर आवाज नहीं दी थी।

'क्या है?' मैंने रुखाई से पूछा। उन्हें मैं अब तक क्षमा नहीं कर पायी थी।

'एक बात कहनी थी।'

'कहिए।'

'अभी-अभी मन में बात उठी, तो कहने चली आयी, बाद में पता नहीं कह भी पाऊंगी या नहीं।'

'कहिए भी।'

'अपने भाईसाहब को पत्र लिखोगी न! तब मेरी ओर से क्षमा मांग लेना। मुझे इतना कटु व्यवहार नहीं करना चाहिए था।'

'यह बात उनके सामने कहती, तो शायद वे ज्यादा खुश होते। पता है, कितने बुरे मूढ़ मैं यहाँ से विदा हुए हूँ यह।'

'पता नहीं मुझे आजकल क्या हो जाता है। वे बात कर रहे थे, तो मुझे लगा, अपना अधिकार जता रहे हैं। और मेरा खून खौल गया। यह तो बाद में ठंडे दिमाग से सोचने पर लगा कि अधिकार तो उनका फिर भी हम पर है, बड़े जो हैं।'

'हां, और उसी प्यार के अधिकार से वे दो बातें कर लेना चाहते थे, पर आपके तो मन में पता नहीं कैसा पूर्वग्रह पैठ गया है।' मैंने चुनककर कहा, 'कितनी बड़ी बात कहने जा रहे थे वे आपसे, पर आपने मौका ही न दिया।'

'क्या बात थी?'

'यह घर हरि भैया के नाम करना चाहते हैं वह।'

'क्या? ...' भाभी चौंकी और एकदम उठ खड़ी हुई, 'सच कह रही हो, नमिता?'

'हां, और आपको खुश होना चाहिए कि आपकी जिद पूरी हुई। अब से आपको किसी और के घर में नहीं रहना पड़ेगा।'

'तो यह मेरी शान में हो रहा है... नमिता, अभी-अभी मैं तुम्हारे नाई

साहब से क्षमा मांगने आयी थी। लेकिन लगता है, अब कभी क्षमा नहीं कर पाऊंगी। शादी के बाद हर औरत अपना घर चाहती है। इसमें अनहोनी क्या है? फिर उसके लिए इतना आडंबर रचने की क्या आवश्यकता है।'

'इसमें आडंबर क्या है, भाभी? यह तो वल्कि...'

'एक और उपकार है, यही न। पिछले अहसानों के बोझ से दबे हुए हैं अब तक हम लोग। इसके बाद तो शायद कभी भी सिर नहीं उठा सकेंगे। एक तरह से मेरी उमरकैद का फरमान होगा यह।'

'क्या अंटशंट बके जा रही हैं आप! अहसानों की भाषा में हमने कभी सोचा भी नहीं।'

'यही तो आपका वड़प्पन है। देते जायेंगे और कभी जवान पर नाम न लायेंगे, लेकिन हमारे लेते रहने की भी तो कुछ सीमा होनी चाहिए... सच कहती हूँ नमिता, मैं किराये के दो कमरों में भी गुजारा कर लूंगी, वशर्त वह मेरा घर हो। जहाँ हर पल यह भान न होता रहे, हम किसी और की छत के नीचे खड़े हैं। हर कौर के साथ यह ग्लानि न लिपटी रहे कि हम किसी और का दिया खा रहे हैं। इस तरह का अन्न खाते-खाते इन लोगों का स्वाभिमान जंग खा चुका है। पर मुझमें अभी कुछ स्वत्व शेष है, तभी तक मुझे यहां से चले जाना है।' कहते-कहते भाभी बुरी तरह कांप उठी थीं। उनका चेहरा एकदम श्रांत-बलांत हो गया था, आंखों की कोरें भीग गयी थीं।

'आप बेकार परेशान न हों,' मैंने सांत्वना के स्वर में कहा, 'भैया समझ गये थे कि इस बात से आपको दुःख होगा। इसीलिए फिर चुप रह गये थे।'

'भाई साहब बहुत समझदार हैं।' उन्होंने थके स्वर में कहा, 'उन्हें मेरी ओर से धन्यवाद दे देना और कहना—इतने उपकार किये हैं, तो एक और कीजिए, अंतिम। हम लोगों को निकाल बाहर कीजिए।'

'छिः भाभी, कैसी बातें करती हो!' मैंने मीठी झिड़की दी।

'सच कह रही हूँ नमिता, दो पीढ़ियां इस घर में राख हो चुकी हैं। तीसरी को मैं आग में नहीं झोंक सकती। नहीं, मैं यह नहीं कर सकती।'

‘तीसरी पीढ़ी ?’

‘हां, महाभारत के अभिमन्यु ने गर्भ में ही चक्र-व्यूह-प्रवेश का तंत्र सीख लिया था। मेरा अभिमन्यु मुझे चक्रव्यूह से बाहर आने का मंत्र दे रहा है।’

‘तुम्हारा अभिमन्यु ? ...ओ भाभी, हाउ स्वीट !’ और मैं दोनों बाहे उनके गले में डालकर झूल गयी।

हरि के अजन्मे शिशु के प्रति यह कैसी ममता उमड़ आयी थी !



.

पाषाण-युग





‘बल बकुल, तेरे दूल्हे को स्टेशन छोड़ आएँ।’ भाभी ने लाठ भरे स्वर में इसरार किया।

‘ना बाबा ! मैं तो यही से टा-टा कर लूगी।’ मैंने कहा। भाभी ने ज्यादा जोर नहीं दिया, तो समझ गयी कि महज एक फार्मेलिटी निभायी थी उन्होंने। चली जाती, तो शायद उन्हें अमुविधा ही होती।

लेकिन जब अपनी तीनों भवारियों को लेकर तागा आंखों से ओझल हो गया, तब लगा, चली ही जाती, तो ठीक था। कुछ ऊब तो कम हुई होती।

पर दूसरे ही पल इनका रातवाला रौद्र रूप याद आया, तो लगा, अच्छा ही हुआ। कही सबके सामने ही कुछ कह बैठने तो ! रात तो खैर, अपने अपमान को मैंने अकेले ही झेल लिया था। भाभियों ने तो इतनी चुहलवाजी के बाद ठेल-ठालकर मुझे कमरे में भेजा था, पर दरवाजा बंद करते ही ये उबल पड़े थे, ‘हर बात का अपना एक समय होता है, बकुल ! अपना एक औचित्य होता है। इस घर की जो भी परंपरा रही हो, लेकिन मैं इतना अधीर नहीं कि धक्कुर की तेरही के दिन भी पत्नी की कामना करने लगूँ।’

उनके इस वक्तव्य से स्तब्ध रह गयी थी मैं। जवाब भी क्या देनी ! कैसे बनलाती कि आयी हूँ, उसी दिन से इसी कमरे में मेरा बिस्तर लगता रहा है। दूसरा ठौर ही कहाँ था ! दोनों भाभियों ने तो अपने-अपने कमरे

घेर लिये थे। कभी किसी ने नहीं सोचा कि वकुल अकेली कमरे में घबराएगी। उसके पास कोई सो जाए, या अपने पास ही बुला ले।

दाखीवाई तो रोज़ वर्तन मलते हुए बड़बड़ाती थी, 'वाप मरे पे भी लुगायों नी छोड़ी जायें हो। कसो जमानो आयो है।'

चूड़ियां खनकीं, तो मैंने पीछे मुड़कर देखा, दाखीवाई ही थी। सूखे कपड़ों का ढेर समेट रही थी।

'कंवर साब गया काई?' उसने पूछा।

मैंने सिर हिला दिया।

'तम नी गया साथे?'

'अभी कुछ दिन मम्मी के पास रहूंगी।'

'और ई सब?'

'ये लोग तो कल-परसों चले जायेंगे। छुट्टी खतम हो रही है न।'

'हूं।' उसने मुंह विचका दिया। उसके मन का सारा अविश्वास, सारा तिरस्कार इस भंगिमा में प्रकट हो गया।

शिशिर की गुनगुनी धूप में छत पर खड़ा रहना बड़ा सुखद लग रहा था, पर दाखीवाई का वाचाल साथ रसभंग करनेवाला ही था। उसके लिए कोई भी विषय निपिद्ध नहीं था और कई बार वह मुझसे भी कुछ न कुछ कहलवा ही लेती थी। और फिर देर तक मुझे डर लगा रहता कि किसी ने सुन न लिया हो।

'नीचे कोई आया तो नहीं?' मैंने जीने की ओर पैर बढ़ाते हुए पूछा।

'आया है नी! छोटी भाभी जी बैठी हैं बड़ा कमरां मां।'

मेरा दिल बैठने-सा लगा। इन दिनों आनेवालों का तांता लगा हुआ था। हॉल तो कभी खाली ही नहीं रहता। पापा की लोकप्रियता का सजीव प्रमाण था यह। पहले-पहल तो ढेर सारे लोग देखकर खुशी होती थी... लगता था, इतने सारे लोग हमारे दुःख में हिस्सा बंटा रहे हैं। लेकिन अब ता दहशत-सी होने लगी है। बार-बार वही जुमले बोलकर मुंह का स्वाद जाता रहा है और प्रत्येक बार प्रत्येक आगंतुक को रिपोर्ट-सी देनी होती है—अजय कब आया? अभय कब आया? कितने दिन ठहरेंगे? शकुन क्यों नहीं आयी? और फिर दीदी के विवाह की अप्रिय चर्चा।

इन सबसे बचने के लिए मैंने पिछले दरवाजे से जाना ही ठीक समझा । दबे पाव जीना उतरकर मैं बगीचे की ओर मुड़ गयी । हॉल के नीचे से गुजर रही थी, तभी मुना, छोटी भाभी नाटकीय ढंग से बतला रही थीं, 'हाय, मैं तो इतनी घबरा गयी थी । डेड बॉडी को लाइफ में फर्स्ट टाइम देखा या न! ओह, इट वॉज टेरीबल !'

इतनी कोपत हो आयी । आखिर यह सब कितनी बार कहा जायेगा और डेड बॉडी नया रोज देखने की चीज है ! कौन ऐसा अभाग होगा !

सब तो यह है कि इस तरह की बात कहने से दो काम सिद्ध होते हैं । एक तो अपनी नज़ाकत का बखान हो जाता है । दूसरे यह भी साबित हो जाता है कि पापा की मृत्यु के समय केवल यही लोग उपस्थित थे और अगर थे भी, तो आश्चर्य क्या है ! आखिर नागदा से इंदौर की दूरी ही कितनी है । इन्हें तो समय पर पहुंचना ही था । लेकिन कितनी बार यह प्रसंग सुनाया जायेगा ।

यू ही जलते-भुनते मैंने पिछले दरवाजे से भीतर पैर दिया, तो मसालों की सुगंध ने स्वागत किया । समझते देर नहीं लगी कि बुआजी किचन में विराजमान है । आयी हूँ, उसी दिन से उन्हें शिकायत है कि महाराज खाना डंग से नहीं बनाता । इसीलिए अक्सर कुछ-न-कुछ अपनी पसंद का छौंक लेती है ।

'आज तो बुआजी, बड़ी जल्दी खाना बन रहा है ।' मैंने एक कुर्सी खींचकर आसन जमाते हुए पूछा ।

'अरे, आज गीता भवन जाऊंगी । महाराज बोला कि बड़े अच्छे प्रवचन हो रहे हैं वहा । और सुन तो, अजय कहा गया है ?'

'स्टेशन गये हैं, इन्हें छोड़ने ।'

'वह भी साथ गयी है क्या ? बड़ी देर से दिखाई नहीं दी ।' (बुआजी का दिमाग क्या है, पूरा हाज़िरी रजिस्टर है) ।

मैंने जवाब नहीं दिया, तो बोली, 'अच्छा लगता है यह ! लोग तुम्हारे दरवाजे मिलने आ रहे हैं और तुम मिया-बीबी घूमने जा रहे हो ।'

'दरअसल उन्हें बच्चों के लिए कुछ...'

'अरे, बाह ! दुनिया तो बंबई से सामान मंगाती है और ये यहा से ले

जायेंगी। और वच्चों को साथ ले आतीं, तो क्या छूत लग जाती? कोई बीए-एमे की पढ़ाई थी, जो मारी जाती। अरे, वच्चों का दादा मरा था, कोई ऐरा-नैरा नहीं था।'

'हम भी तो अपनी सुमा को लाये ही हैं कि नहीं।' छोटी भाभी ने आग में घी छोड़ते हुए कहा। वे पता नहीं कब मेहमानों को विदा करके भीतर आ गयी थीं।

मैंने बेजार होकर मेज पर सिर रख दिया। शोक-प्रदर्शन की जैसे होड़-सी लगी हुई है और हर कोई दूसरे से वाजी मार लेना चाहता है।

और जिस पर यह दुःख का पहाड़ टूट पड़ा है, उसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं है। फूफाजी की मृत्यु पर मैं पापा के साथ बुलंदशहर गयी थी, तब देखा था—बुआजी दिनभर निढाल पड़ी रहतीं और घरभर उन के आराम के लिए, सांत्वना के लिए खटता रहता। घर में पचासों लोग आ-जा रहे थे, उन्हें कोई होश नहीं था। कितने रिश्तेदार घर में जुट गये थे, कितने सारे लोगों के लिए रोज़ खाना बनता था, पर उन्हें कोई परेशान नहीं करता था।

और यहां, यहां तो सब जैसे मेहमानदारी के लिए ही आये हुए हैं। हर बात के लिए मम्मी के पास दौड़ जायेंगे—मम्मीजी, मच्छरदानियां कहां रखी हैं? मम्मीजी, गैस खतम हो गयी! मम्मीजी, शाम को दूध कितना आयेगा? मम्मी, अमुक का फोन नंबर क्या है? मम्मी, सामान कौन-सी दुकान से आयेगा?

एक नहीं, सौ-सौ प्रश्न। अपनी जिम्मेवारी पर जैसे कोई कुछ करन ही नहीं चाहता। और पत्थर में तराशा-सा चेहरा लिये मम्मी सबके जवाब दिये जाती हैं। जरूरत आ पड़े, तो खुद भी दो-चार काम निपटाती रहती हैं। और ऐसे मौकों पर मुंह पर पल्लू की आड़ देकर बुआजी फुसफुसात रहती हैं, 'उसे क्यों दरद आयेगा भला। कौन फेरे पड़कर इस घर में आ रहा है।'

जैसे दुःख के लिए भी अग्नि-नारायण की साक्षी बहुत जरूरी है।

भला हो महाराज का, जो बुआजी को गीता भवन के प्रवचन सुनाने लि

ले गया और हम लोगों को पहली बार कुछ प्रायवेसी मिली। देर रात तक हम लोग बैठे बतिषाते रहे। पता नहीं, कितने सालों बाद यह संयोग आया था।

दसैक बज चुके होंगे, जब बड़े भैया बोले, 'एक-एक कप कॉफी हो जातो, तो मजा आ जाता।'।

मैंने कुछ क्षण प्रतीक्षा की, पर दोनों भाभियां ब्रूत बनी बैठी रही। तब मैंने ही यह भार अपने ऊपर ले लिया और नीचे आ गयी। मम्मी के कमरे की बत्ती जल रही थी। सोचा, चलकर उनसे भी पूछ लू।

'मम्मी, आप....' मैंने कहा तो, पर शब्द जैसे मुंह में ही जम गये। उनकी छोटी-सी राइटिंग मेज पर डेर-सी चिट्ठियां बिखरी पड़ी थीं और वे निर्निमेष सामने गुप्ताजी की कोठी की ओर देख रही थी। एक उजड़ी हुई दुनिया उनके चेहरे पर प्रतिबिम्बित हो उठी थी और मुझे यह ग्लानि कबोटने लगी कि इतनी देर तक किसी को भी उनका ध्यान न आया।

सहसा कुछ सम्मिलित ठहाकों की आवाज सामने वाली कोठी से उभरी और कलेजे को चीरती चली गयी। मम्मी ने भी दोनों हूयेलियों से कान ढक लिये। तो क्या उन्हें भी उन ठहाकों में पापा की हंसी की अनुगूँज सुनाई दे गयी थी।

तैश में आकर मैंने इतनी जोर से खिड़की बंद की कि वे भी चौंक पड़ीं, 'कौन है...बकुल ?'

'क्या ये लोग कुछ दिन तक खेल नहीं बंद कर सकते ?' मैंने गुस्से से उफनते हुए कहा।

'इतने दिनों बाद आज ही तो बैठे हैं बेचारे।' उन्होंने शांत स्वर में कहा, 'खेलने का तो बहाना है। दरअसल ये लोग तो अपनी मॉनोटॉनी से, ऊब से भागकर यहाँ आते हैं। ऐसा न करें, तो अपने पैसे में ही दफन हो जायेंगे ये सब।'।

मुझे इस वक्तव्य में कोई दिलचस्पी नहीं थी, इसलिए मैंने कहा, 'दरअसल आपसे मूछने आयी थी, आप कॉफी लेंगी ? मैं सबके लिए बना रही हूँ।'।

'चलेंगी। और हा, आपकी परम पूज्यनीय बुआजी कहा हैं ? बड़ी

देर से उनकी गर्जना नहीं सुनाई दी ।’

मुझे आश्चर्य होता है, इतनी तीखी बात भी मम्मी कितने स्वाभाविक ढंग से कह जाती हैं ।

‘बुआजी आज थोड़ा पुण्य संचय करने गयी हैं ।’

‘अच्छा ! तब एक काम करो । सबकी कॉफी यहीं ले आओ । कुछ जरूरी बातें करनी हैं ।’

बुआजी की अनुपस्थिति का लाभ हर कोई उठाना चाहता है, मैंने सोचा और किचन का रुख किया ।

‘आप क्यों दिनभर इन चिट्ठियों में दिमाग खपाती हैं । एक अच्छा-सा मैटर प्रिंट करवा लेते ।’ बड़े भैया ने उस कॉफी-पार्टी का मौन तोड़ते हुए कहा ।

‘मेरे पास करने को अब है ही क्या । चिट्ठियां लिखते हुए कुछ समय तो कट जायेगा ।’

‘मम्मी, आप मेरे साथ चलिए न ।’ इतने दिनों से मन में घुमड़ती बात को मैं आज कह पायी ।

‘पगली ! जाना ही होगा, तो पहले अपने लड़कों के पास नहीं जाऊंगी ।’ मम्मी ने अजीब-से वुजुर्गाना अंदाज में कहा ।

‘श्योर-श्योर ।’ बड़े भैया बोल उठे और काफी देर तक भाभी को इशारा करते रहे । पर जान-बूझकर वे एक पत्रिका के पन्ने पलटती हुई उन्हें अनदेखा करती रहीं । बंबई के अपने ढाई कमरों वाले फ्लैट में शायद वे मम्मी को एडजस्ट नहीं कर पा रही थीं...और छोटे भैया से ऐसी उम्मीद ही व्यर्थ थी ।

एक अजीब-सी चुप्पी कमरे में फिर घिर आयी थी । मम्मी ने ही उसे तोड़ते हुए शुरुआत की, ‘मैं ऊपर की मंजिल किराये पर देने की सोच रही हूँ ।’

‘किराये पर, क्यों ?’

‘इतने बड़े घर में मैं अकेली कैसे रह पाऊंगी ? और...और मुझे पैसें की भी जरूरत है ।’

एक अजीब-सी शर्म से हम लोग भीतर-ही-भीतर सिकुड़ गये। सचमुच मम्मी के हिस्से क्या आया था, सिर्फ यह मकान। पापा की पुस्तकों की रायल्टी भी थी, पर वह कितनी होगी ! गंभीर, विद्वत्तापूर्ण विवेचनात्मक पुस्तकें थी वे—उपन्यास तो थे नहीं कि हाथों-हाथ बिक जाते। पापा ने अपनी सारी पुस्तकें कॉलेज को दे दी थी। मां के भारी-भरकम गहने बहुओं में और मुझमें बंट गये थे। थोड़ी-बहुत जमापूजी थी, उसमें सबका हिस्सा था...और एक प्रोफेसर की कमाई होती ही कितनी है। मम्मी ने ठीक ही तो सोचा है। जीवनयापन के लिए कुछ तो चाहिए।

‘मैं यह सोच रही थी कि यहां से जो सामान जिसे अच्छा लगता हो, लेते जाओ। उतनी-सी जगह में सारा सामान समायेगा नहीं।’ मम्मी शांत स्वर में कह रही थी।

‘लेकिन मम्मीजी,’ इतनी देर बाद छोटी भाभी का मुंह खुला, ‘सब लोग आ जाते हैं, तो घर आज भी छोटा पड़ता है। फिर तो बहुत ही मुश्किल होगी।’

‘सब लोग कब-कब आते हैं, अणिमा ! उनके सामने ही कितनी बार आये हो तुम लोग !’ मम्मी ने अपने उसी सहज स्वर में चोट की। छोटी भाभी का मुंह इतना-सा निकल आया।

‘एक बात और पूछनी थी। इस घर के प्रति तुम लोगों को कोई मोह तो नहीं है?’

‘क्या मतलब?’

‘मैं इसे शकुन के नाम कर जाना चाहती हूं।’

स्तब्ध रह गये हम लोग। दीदी के नाम ? क्यों ? मम्मी को सबसे ज्यादा तिरस्कार, उपेक्षा, अवज्ञा जिनसे मिली, उन्हीं के नाम इतना बड़ा दान ! क्यों ? (सच कहूं तो मुझे कुछ कचोट-सी हुई। मैं अपने को सबसे ज्यादा मम्मी के निकट पाती थी)।

‘हमें कोई एतराज नहीं है मम्मी, पर मैं नहीं सोचता, दीदी अब लौटेंगी। वे तो वहीं सेटल हो चुकी है।’ बड़े भैया ने जैसे सबके मन की बात कह दी।

‘न आये तो ठीक ही है, वह जहां भी रहे, मुख से रहे। लेकिन अगर किसी दिन लौटना भी चाहे, तो यहां उसका ठिकाना तो होना चाहिए कि



देर से उनकी गर्जना नहीं सुनाई दी ।’

मुझे आश्चर्य होता है, इतनी तीखी बात भी मम्मी कितने स्वाभाविक ढंग से कह जाती हैं ।

‘बुआजी आज थोड़ा पुण्य संचय करने गयी हैं ।’

‘अच्छा ! तब एक काम करो । सबकी कॉफी यहीं ले आओ । कुछ जरूरी बातें करनी हैं ।’

बुआजी की अनुपस्थिति का लाभ हर कोई उठाना चाहता है, मैंने सोचा और किचन का रुख किया ।

‘आप क्यों दिनभर इन चिट्ठियों में दिमाग खपाती हैं । एक अच्छा-सा मैटर प्रिंट करवा लेते ।’ बड़े भैया ने उस कॉफी-पार्टी का मौन तोड़ते हुए कहा ।

‘मेरे पास करने को अब है ही क्या । चिट्ठियां लिखते हुए कुछ समय तो कट जायेगा ।’

‘मम्मी, आप मेरे साथ चलिएन ।’ इतने दिनों से मन में घुमड़ती बात को मैं आज कह पायी ।

‘पगली ! जाना ही होगा, तो पहले अपने लड़कों के पास नहीं जाऊंगी ।’ मम्मी ने अजीब-से वुजुर्गना अंदाज में कहा ।

‘श्योर-श्योर ।’ बड़े भैया बोल उठे और काफी देर तक भाभी को इशारा करते रहे । पर जान-बूझकर वे एक पत्रिका के पन्ने पलटती हुई उन्हें अनदेखा करती रहीं । बंबई के अपने ढाई कमरों वाले फ्लैट में शायद वे मम्मी को एडजस्ट नहीं कर पा रही थीं...और छोटे भैया से ऐसी उम्मीद ही व्यर्थ थी ।

एक अजीब-सी चुप्पी कमरे में फिर घिर आयी थी । मम्मी ने ही उसे तोड़ते हुए शुरूआत की, ‘मैं ऊपर की मंजिल किराये पर देने की सोच रही हूँ ।’

‘किराये पर, क्यों ?’

‘इतने बड़े घर में मैं अकेली कैसे रह पाऊंगी ? और...और मुझे पैसे की भी जरूरत है ।’

एक अजीब-सी शर्म से हम लोग भीतर-ही-भीतर सिकुड़ गये। सचमुच मम्मी के हिस्से क्या आया था, सिर्फ यह मकान। पापा की पुस्तकों की राफ़्टी भी थी, पर वह कितनी होशी ! गंभीर, विद्वत्तापूर्ण विवेचनात्मक पुस्तकें थी ये—उपन्यास तो ये नहीं कि हाथों-हाथ बिक जाते। पापा ने अपनी सारी पुस्तकें कॉलेज को दे दी थी। मां के भारी-भरकम गहने वहुओं में और मुझमें बंट गये थे। थोड़ी-बहुत जमापूंजी थी, उसमें सबका हिस्सा था...और एक प्रोफेसर की कमाई होती ही कितनी है। मम्मी ने ठीक ही तो सोचा है। जीवनयापन के लिए कुछ तो चाहिए।

‘मैं यह सोच रही थी कि यहां से जो सामान जिसे अच्छा लगता हो, लेते जाओ। उतनी-सी जगह में सारा सामान समायेगा नहीं।’ मम्मी शांत स्वर में कह रही थी।

‘लेकिन मम्मीजी,’ इतनी देर बाद छोटी भाभी का मुंह खुला, ‘सब लोग आ जाते हैं, तो घर आज भी छोटा पड़ता है। फिर तो बहुत ही मुश्किल होगी।’

‘सब लोग कब-कब आते हैं, अणिमा ! उनके सामने ही कितनी बार आये हो तुम लोग।’ मम्मी ने अपने उसी सहज स्वर में चोट की। छोटी भाभी का मुंह इतना-सा निकल आया।

‘एक बात और पूछनी थी। इस घर के प्रति तुम लोगों को कोई मोह तो नहीं है?’

‘क्या मतलब?’

‘मैं इसे शत्रुन के नाम कर जाना चाहती हूं।’

स्तब्ध रह गये हम लोग। दीदी के नाम ? क्यों ? मम्मी को सबसे ज्यादा तिरस्कार, उपेक्षा, अवज्ञा जिनसे मिली, उन्हीं के नाम इतना बड़ा शान ! क्यों ? (सच कहूं तो मुझे कुछ कचोट-सी हुई। मैं अपने को सबसे ज्यादा मम्मी के निकट पाती थी)।

‘हमें कोई एतराज नहीं है मम्मी, पर मैं नहीं सोचता, दीदी अब लौटेंगी। वे तो वही सेटल हो चुकी हैं।’ बड़े भैया ने जैसे सबके मन की बात कह दी।

‘न आये तो ठीक ही है, वह जहां भी रहे, सुख से रहे। लेकिन अगर किसी दिन लौटना भी चाहे, तो यहां उसका ठिकाना तो होना चाहिए कि

था, 'कुछ मंजिलें ऐसी होती हैं रणजीत, जहां से लौटने की राह नहीं होती।'।

रात के घुप्प अंधेरे में यह बात एकदम विजली की तरह कौंध गयी। दीदी की बात कहते हुए मम्मी क्या अपना ही इतिहास नहीं दोहरा रही थीं ! दीदी की शादी तो महज एक अप्रिय घटना थी, पर मम्मी की शादी तो अपने साथ एक तूफ़ान लायी थी। उम्र के इस पड़ाव पर खड़े होकर पता लगता है, मम्मी ने कितना उपहास सहते हुए यह कदम उठाया था। कितना भरा-पूरा ममतामय परिवार पीछे छोड़ आयी थीं वे और स्वागत को थे चार-चार जवान होते हुए बच्चे, जिनके हृदय प्रतिहिंसा और विद्वेष से धधक रहे थे। और पाटने को कितनी खाइयां थीं—जाति की, भाषा की, संस्कारों की और सबसे बढ़कर उम्र की।

कैसे निभाया होगा उन्होंने यह सब ? कैसे काटे होंगे ये लम्बे बारह वर्ष ? कैसे जीवित रख पायीं अपनी अस्मिता, अपना अहं ?

मन एकदम पीछे दौड़ गया था। मई की उस बेफिक्र सुबह में हम चारों नाश्ते की मेज पर थे। पर रोज़ की तरह चीख-पुकार, छीना-झपटी, शोर-शराबा कुछ नहीं हो रहा था। महाराज को अपनी शालीनता से चौंकाते हुए हम लोग चुपचाप कौर मुंह में ठूंसे जा रहे थे। मेज के बीचों-बीच पड़ा तार का गुलाबी कागज़ हम सबको मुंह चिढ़ा रहा था।

‘नीरजा से शादी कर ली है

रविवार को पहुंचूंगा

—पापा

उस छोटे-से वाक्य ने जैसे हम सबके मुंह के शब्द छीन लिये थे। और फिर एकाएक छोटे भैया मेज पर मुक्का मारकर चीखने लगे, ‘मैं उसे घर से बाहर निकाल दूंगा और बुढ़ू को शूट कर दूंगा।’

‘बकवास मत करो !’ बड़े भैया गुरगुराये।

‘मुझे तो पहले ही पता था।’ दीदी बोलीं।

‘बकवास मत करो !’ बड़े भैया फिर गुरगुराये, ‘किसी को कुछ पता नहीं था। यह केवल सरप्राइज की तरह हुआ। ए हेटफुल सरप्राइज।’

‘बकुल तो बड़ी खुश हो रही होगी। मोस्ट फेवरिट नीरू दीदी...’

‘क्या नीरू दीदी तुम्हारी फेवरिट नहीं थी?’ मैंने तड़पकर कहा और सब एकदम चुप हो गये।

मैंने झूठ नहीं कहा था। मा के बिना भांय-भाय करते हुए इस घर के लिए नीरू दीदी सचमुच वरदान थी। हम सभी अपनी-अपनी जरूरतों के लिए उनका मुह तकते थे। बड़े भैया उनका बुना स्वेटर पहने बड़ी शान से कॉलेज जाते थे। कॉलेज से लौटकर छोटे भैया बड़ी शान से चाय-नाश्ते की फरमाइश करते थे। मेरे लिए तो वे सबसे बड़ा आश्रय-स्थान थी। मा की याद जब असह्य हो उठती, तब उन्हीं की गोद में मुह छिपाकर रो लिया करती थी। इसके अतिरिक्त डिबेंट्स के लिए पाइंट्स तैयार करना, समारोह के लिए फैंसी ड्रेस चुनना, रविवार के दिन धुले हुए बालों को मुलक्षाना—सारे काम उन्हीं को सौंपकर मैं निश्चित हो जाती थी। दीदी के पास इन फालतू कामों के लिए वक्त कहा था। एक तो मेडिकल की पढाई, दूसरे किशोर भाई—बस, उनका सारा समय इन्हीं में बीतता था। इसी-लिए हर छोटी-छोटी बात के लिए नीरू दीदी का सहारा लेना पड़ता।

इस सबके बावजूद उनका यू अचानक मा की जगह ले लेना किसी को अच्छा नहीं लगा—मुझे भी नहीं।

टैक्सी रुकी, तो हम लोग लिड़कियों से झाक-झाककर देखने लगे। अपना सूटकेस लेकर नीरू दीदी उतरी थी, अकेली। वे चटनी कलर की काम-दार बंदेरी साड़ी पहने थी। प्यारा-सा खूब बड़ा-सा जूड़ा बना रखा था। माथे पर बड़ा-सा गोल टीका था और माग में दप-दप करती गाड़ी सिंदूर की रेखा थी। नीरू दीदी एकदम अलग लग रही थी...और खूब अच्छी।

‘हलो एवरीवडी!’ कुछ ही पल में उनके अभ्यस्त चरण उग्रे डायनिंग रूम के दरवाजे तक ले आये थे। दोनों भैया तो पता नहीं कब से खिसक गये थे। लेकिन दीदी अपनी नाराजगी का खुला प्रदर्शन करती हुई उनके सामने से निकल गयी। मुझे कुछ सूझ ही नहीं पड़ा, मैं वही कुर्सी से चिपकी बैठी रह गयी। क्षणभर पहले खिले गुलाब-सा लगनेवाला उनका चेहरा एकदम मुरझा गया।

‘पापा कहा हैं?’ बड़ी देर बाद मैंने पूछा।

‘यूनिवर्सिटी गये हैं। डीन ऑफ फैकल्टीज की मीटिंग थी शायद।’ उन्होंने वुभी-सी आवाज में कहा।

इतना गुस्सा हो आया पापा पर। यहां परिस्थिति से जूझने के लिए उन्हें अकेले भेज दिया और खुद कायर की तरह यूनिवर्सिटी में जाकर दुवक गये।

एकाएक मुझे उन पर ममता हो आयी। अपनी कुर्सी खिसकाते हुए मैंने कहा, ‘दीदी, आप बैठिए न ! मैं अभी चाय के लिए कहकर आती हूँ।’

लौटकर देखा, नीरू दीदी टेबल पर सिर डाले चुपचाप बैठी हैं।

आंखों में एक अजीब-सा सूनापन घिर आया है।

‘दीदी, चाय लीजिए। नाश्ता अभी लेंगी या पापा के साथ?’

मैंने कुछ-न-कुछ बोलते रहने की गरज से कहा।

‘तार कब मिला?’

‘अभी-अभी।’

‘बहुत नाराज हो न तुम लोग!’

‘दीदी, आप चाय ले लीजिए, ठंडी हो रही है।’

‘वकुल!’ इस बार उनकी आवाज खूब कांप रही थी, ‘प्लीज, मुझे मम्मी कह सकोगी?’

मैं स्तब्ध होकर देखती रह गयी।

‘औरों से तो कहने की हिम्मत नहीं है, पर तुम पर शायद थोड़ा अधिकार है।’

‘इस औरत के साथ मैं इस घर में नहीं रह सकती।’ दीदी ने एक दिन अपना फैसला सुना दिया। उनकी इंटर्नशिप शुरू हो गयी थी। हर महीने एक छोटी रकम उनके हाथ आ रही थी, इसीलिए वे पापा से इस टोन में बात कर सकीं। यह तो अच्छा था कि नीरू दी—सारी मम्मी, वहां नहीं थीं। वे बहुत ही कम नीचे उतरतीं। पापा भी ऊपर अपने कमरे ही में रहते। पहले की तरह वहां दौड़-दौड़ जाना अब मुझे अच्छा नहीं लगता। किसी ने मुझे ये बातें सिखायी नहीं थीं, पर पता नहीं क्यों, अब इच्छा नहीं होती।

थी। पापा भी अब उतने अपने-मे नहीं लगते थे।

दीदी के चने जाने के बाद एक दिन बड़े भैया ने अपने स्वर में कहा, 'पापा, इस साल मेरा फाइनल है। मोचता हूँ, होस्टल में रह जाऊंगा, तो दीदी मे पढ़ाई हो सकेगी।'।

'अच्छी बात है,' पापा ने कहा 'अभय, तुम ?'

'होस्टल।' छोटे भैया का दो ठूक उत्तर था।

मुझे डर हुआ, अब शायद मुझमें पूछेंगे। दरअसल मेरी ममक में कुछ नहीं आ रहा था। घर में बाहर रहने का कभी अवसर नहीं आया था। और घर भी अब पहने था-या नहीं लग रहा था।

मम लोगों के चने जाने के बाद तो एकदम ही खाली-खाली-या लगने लगा था। खाने की मेज पर हम तीनों ही होते। मेरा खूब लाड़ होता, पर मैं पहने की तरह चहकना ही भूल गयी थी। धूमने जाते समय मम्मी-पापा मुझे साथ ले जाने थे। पर हर बार अपनी उपस्थिति बहुत गैर-जरूरी-भी लग उठती थी और सारा उस्माह फीका पड़ जाता था।

यूँ भी घर से बाहर निकलना मुश्किल नहीं था। लोगों की आँखें और फुमफुमाहटें हमारा पीछा करती होती। छुट्टियाँ तो हम लोगों ने ताश-कैरम के सहारे गुजार दी थी, लेकिन स्कूल-कॉलेज खुलते ही हम लोग परेशान हो उठें। लड़कियाँ इतने ऊटपटांग प्रश्न पूछती, टीचर्स कुछ ऐसी नज़री से मुझे देखती कि भाग जाने की इच्छा हो जाती। और जब ये बातें घर के भीतर भी पहुँचने लगीं तो अपमान और मज्जा के ये क्षण बहुत ही कठिन होते। मेरे कारण तो और भी ज्यादा। और इसीलिए एक सुबह मेरे लिए भी होस्टल का निर्णय ले लिया गया। दीदी होस्टल में मिलने आयी थी, छूटते ही बोली, 'बलो, यह भी अच्छा हुआ। सारी भीड़ छंट गयी। लोग-बाग अब जी भरकर हनीमून मनायेंगे।'।

मुनकर अच्छा नहीं लगा। कम-से-कम पापा का लिहाज तो जरूरी था। लेकिन इतना ऊँच-नीच दीदी रानी कब सोचती थी।

गुरु-गुरु में होस्टल अच्छा नहीं लगा था। रविवार की बेसव्री से प्रतीक्षा रहती। पापा लेने आते, तो लगता, पिजरे से छूटकर भाग रही हूँ। घर का दिनोदिन निखरता-संवरता रूप अच्छा लगता। वरामदे मे

खड़ी वाट जोहती मम्मी बहुत अपनी लगती ।

पर धीरे-धीरे यह कार्यक्रम रूटीन बन गया और उसमें भी ऊब महसूस होने लगी । सहेलियों को छोड़कर घर के उस एकांत सुनसान में जाने से जी कतराने लगा । रविवार की छुट्टी बरवाद करने की इच्छा नहीं होती ।

अच्छा हुआ, मम्मी-पापा जल्दी ही इसे समझ गये । वैसे भी उन्हें समझाने के सौ बहाने मेरे पास थे—कभी पढ़ाई का, कभी पिकनिक, तो कभी पिकचर का ।

उस दिन हम सबको स्कूल-बस से पातालपानी ले जाया गया था । फॉल के सिरे पर बस के रुकते ही हम सब लोग कूद पड़े थे । एक होड़-सी थी—ऊबड़-खाबड़-सी पहाड़ी सीढ़ियों को लांघकर कौन सबसे पहले पानी के पास पहुंचेगा । मैं सबसे आगे थी, क्योंकि बीसों बार देखी हुई जगह थी मेरी । लेकिन कुछ दूर जाकर ही मैं ठिठक गयी । सामने कुछ दूर पर किशोर भाई अपनी मोटर साइकिल लिये दोस्तों के साथ खड़े थे ।

‘जीजाजी !’ मैंने आवाज़ दी और दौड़कर उसके पास पहुंच गयी । दीदी लोग डांटेंगी, इसका भी ध्यान नहीं रहा ।

‘जीजाजी, नमस्ते ।’ मैंने खुशी से किलकारियां भरते हुए कहा । उन्होंने पलटकर देखा, चेहरे पर जैसे बर्फ जमी हुई थी ।

‘मेरा नाम जानती हो, बकुल ?’ बहुत ही सख्त स्वर में उन्होंने कहा, ‘मुझे मेरे नाम से बुलाया करो ।’

मैं फटी-फटी आंखों से देखती रह गयी । पीछे से किसी ने पुकारा, तब जाकर होश आया कि मैं अपना ही तमाशा बना रही हूं । किसी तरह चलकर अपने ग्रुप तक पहुंच पायी मैं ।

आउटिंग का सारा मूड तो हवा हो ही चुका था ।

उसके कई दिनों बाद दीदी से मुलाकात हो पायी थी । उन्हें देखते ही अपमान की कड़वी याद ताजी हो आयी और मेरी आंखें डबडबा आयी थीं, ‘आपके किशोर भाई ने इतनी इंसल्ट की थी हमारी उस दिन । मैं अब कभी भी उनसे बात नहीं करूंगी ।’ मैंने मुंह फुलाकर कहा ।

‘मत करना. वह तुम्हें मनाने भी नहीं आयेगा ।’ दीदी का स्वर और

चेहरा इतना रुखा था कि मैं सहम-सी गयी—'और अब वह मेरा किशोर भी नहीं है।' बड़ी देर बाद उन्होंने सपाट स्वर में कहा।

क्यों ?

लेकिन प्रश्नों के उमड़ते मैलाव को मन ही मैं रोक लेना पड़ा। दीदी से कुछ पूछने का साहस नहीं था। और फिर कुछ दिन बाद तो वह बात भूल भी गयी मैं।

फिर पता नहीं कौसी छुट्टी थी, पर इतना याद है कि दो दिन के लिए घर गयी हुई थी। होस्टल की अनुशासन-वद्ध जिंदगी के बाद भी बजे तक विस्तर में लेटना बड़ा प्यारा मालूम हो रहा था। नींद तो क्या आती, पर लिहाफ में लेटने का मुख छोड़ते नहीं बन रहा था।

'बकुल, देख ती।' पापा एकाएक मेरे कमरे में आये, तो मैं चौंक पड़ी। एक अरसा हो गया था, वे मेरे कमरे में नहीं आये थे। मैं हड़बड़ाकर उठ बैठी।

'यह कार्ड देख।' उन्होंने एक 'वेडिंग कार्ड' मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा। बचपन में बड़ा शौक था मुझे 'प्रोविंग कार्ड्स' और 'वेडिंग कार्ड्स', इकट्ठा करने का। पर अब वे बातें कितनी दूर की लगती थी, हालांकि अभी मैं औरों के लिए 'स्कूल-गर्ल' ही थी।

'कितना प्यारा है न !' मैंने उस लवे-चौड़े कार्ड के सुनहले, मखमली धरातल पर हाथ फेरते हुए, जरी के धागे से खेलते हुए कहा।

'खोलकर तो देख।' पापा ने कहा। मैंने खोला और दो बड़े-बड़े शब्द मेरी आँखों में चुभ गये—

किशोर

और

भारती

जबकि कायदे से यहाँ नाम दीदी का होना था।

'यह कैसे हो सकता है ?' और इसके साथ ही मुझे दीदी से पिछली-वाली मुलाकात याद हो आयी।

'तैयार हो जा बकुल, दाकून के पास चलते है।' पापा ने कहा और उठकर चले गये।



मैं साथ जाकर क्या करूंगी, मैंने सोचा। पर शायद पापा अकेल नहीं जाना चाहते थे। मन-ही-मन दीदी से डरते थे शायद। और मम्मी के साथ जाने का प्रश्न ही नहीं उठता था।

चले तो ये हम दीदी के होस्टल के लिए। लेकिन पापा ने जब स्कूटरवाले को राज मुहल्ले का पता दिया, तो मैं चौंक पड़ी, 'हम लोग कहां जा रहे हैं?'

'किशोर के यहां।' पापा ने जवाब दिया। उनकी आवाज़ जैसे बहुत दूर से आ रही थी।

राज मुहल्ले के उस आलीशान बंगले पर वैसी ही हलचल थी, जैसी अकसर शादीवाले घरों में हुआ करती है। ढेर सारे लोग और ढेर सारा सामान इधर-उधर बिखरा था।

जज साहब हमें देखते ही इस कदर झेंप गये कि ढंग से नमस्ते भी न करते बनी। लेकिन पता नहीं कहां से माताजी पहुंच गयीं और उन्होंने मौके को बड़ी खूबसूरती से संभाल लिया। लंबी-चौड़ी मुसकराहट बिखेरते हुए बोलीं, 'अहा, डॉक्टर साहब आये हैं। कार्ड तो मिल गया होगा न। मैंने कल ही पोस्ट करवाये हैं।'

'जी, मिल गया था, तभी तो हाजिर हुआ हूं।' (क्या यह पापा ही बोल रहे थे?)

'वह तो आपको आना ही था, घर के आदमी हैं आप तो। यह कौन, आपकी छोटी बेटा है न! एकदम लंबी हो गयी है। हू-व-हू अपनी मां पर गयी है।'

'किशोर की शादी एकाएक तय हो गयी, हमें पता भी न चला।' बहुत ही सधे हुए स्वर में कही गयी इस बात से जज साहब सहमकर रह गये। पर माताजी बड़ी ही पुख्ता मिट्टी की बनी हुई थीं। परेशान-सी मुद्रा बनाकर बोलीं, 'अब आपको क्या बताऊं! लड़कीवालों ने हमारी नाक में दम कर रखा था। पिछले छह-सात महीनों में तो यह हाल रहा कि सुबह एक आ रहा है, तो शाम को दूसरा। किस-किस को मना करें, और मना करने का कोई कारण भी तो हो। इन मसूरीवालों ने तो हद कर दी। लड़की यहां दिखाने ले आये और बोले—पसंद हो, तो बोलिए, हम

शकुन करके ही आयेंगे। दरअसल उन्हें जरा जल्दी थी। दोनों बड़े लडके इंग्लैंड में हैं। उनकी छुट्टियां खत्म होने में हैं। बताइए, बार-बार इतनी दूर से आया जाता है कहीं। फिर हमने भी सोचा, लड़की अच्छी है, घर भी अच्छा है। बेकार देर करने से क्या लाभ ! एक बार लड़कों की उम्र निकल जाए, तो फिर अच्छे संबंध भी नहीं आते।'

'मेरा खयाल था, आप लोग शकुन के बारे में जानते होंगे। फर्स्ट इयर से दोनों साथ हैं।' पापा ने किसी तरह उनकी मेल ट्रेन को बीच ही में रोककर कहा।

'वो तो कोएजुकेशन का जमाना है जी।' जज साहब ने इतनी देर बाद मुंह खोला, 'और फिर मेडिकल में तो ये लोग इतने फ्री होते हैं कि कुछ पता ही नहीं चलता।'

पापा का चेहरा गुरसे से तमतमा उठा।

माताजी फिर मौके की नज़ाकत को समझकर बोली, 'हाय डॉक्टर साहब, आप इतनी देर बाद आये हैं। काडेंस न छपे होते, तो मैं सगाई भी तोड़ देती। शकुन इस घर में आती तो मुझसे ज्यादा खुश कौन होता। देखी-भाली लड़की है, फिर घर में सभी उसे चाहते हैं। पर देखिए न, इस तरह की कभी कोई बात ही नहीं उठी। किशोर भी अगर कभी कुछ कहता....'

'किशोर ने भी कुछ नहीं कहा? तब तो फिर मुझे कुछ नहीं कहना है।' और पापा एकदम उठकर चल दिये। चाय की प्यालिया और मिठाई की तश्तरिया मुंह चिढ़ाती रह गयी।

'मैं अपनी शकुन के लिए ऐसा राजकुमार लाऊंगा कि ये लोग देखते रह जायेंगे।' ताने में बैठते हुए पापा ने गुस्से में दात पीसते हुए कहा। उनके चेहरे पर करुणा, वात्सल्य और रोष का मिला-जुला भाव था। बहुत दिनों बाद वे मुझे पहलेवाले पापा लगे थे। पापा, जो बच्चों को बेहद प्यार करते थे—खासकर दीदी को। पहली सतान होने के कारण उनकी सारी ममता, सारी आकांक्षाएं दीदी पर केन्द्रित थी। दीदी को लेकर अक्सर वे मा से नट पड़ते थे। कहते, 'उसे परेशान मत किया करो। उनके तुम्हारी तरह चूल्हा-चौका नहीं करना है जिदगी भर।'

मा भुनभुनाकर चुप हो जाती। पर जब भी कोई बात पापा में मनबानी

होती, तो दीदी को ही आगे किया जाता। हम भाई-बहनों को भी यह रहस्य ज्ञात था। घर में कोई भी नयी चीज़ आती, उसके लिए दीदी की सिफारिश जरूरी थी। त्योहारों पर मिठाई भी बनती, तो उनकी फरमाइश पर। छुट्टियों का प्रोग्राम भी बनता, तो उनकी पसंद से। मां की मृत्यु के बाद तो जैसे घर में उनका एकछत्र साम्राज्य हो गया था।

मम्मी के घर में आते ही दीदी अपने उस सार्वभौम साम्राज्य को छोड़कर होस्टल के इस कमरे में आ गयी थीं। उनके प्रति अन्याय से क्षुब्ध, उनकी व्यथा से भीगे पापा जब उस कमरे तक पहुंचे, तब वे सो रही थीं।

‘आज हॉस्पिटल नहीं गयीं?’ मैंने पूछा।

‘नहीं, आज छुट्टी थी।’ कमरे के बीचोंबीच स्टूल पर रखा हुआ किशोर भाई की शादी का कार्ड देखकर छुट्टी का कारण समझ में आ गया और इस वेवक्त की नींद का भी।

अलमारी में एक पत्रिका पड़ी थी। उसे लेकर मैं तो खिड़की पर जा बैठी। उस छोटी-सी जगह में इससे ज्यादा दूर जाना संभव भी नहीं था। पापा ने जैसे प्रश्नों की झड़ी लगा दी थी। बड़ी देर बाद दीदी ने वस इतना ही कहा, ‘उसकी इच्छा थी कि दूसरे वधु-पिताओं की तरह आप भी थैली लेकर क्यू में खड़े हो जाते।’

‘किशोर की इच्छा थी?’

‘इच्छा शायद उसके मां-बाप की थी, पर उसने उनका विरोध भी नहीं किया था। इकलौता लड़का है न, मां-बाप का मन कैसे तोड़ देता बेचारा!’

‘और इतनी-सी बात के लिए तूने...’

‘बात छोटी थी, पर अपमानजनक थी। मुझसे सहन नहीं हुआ।’

‘मुझसे एक बार कहना तो था, पगली!’

‘किसी की बात सुनने की आपको फुरसत ही कहां थी!’ दीदी ने जैसे पत्थर फेंककर मारा। पत्रिका के पन्नों पर यूँ ही घूमनेवाली नज़रों को उठाकर मैंने देखा, वेदना से पापा का चेहरा काला पड़ गया था। मुझे भी बहुत बुरा लगा। बात चाहे सच ही हो, उसे क्या इस तरह मुंह पर फेंककर मारना चाहिए।

लेकिन सारा दुःख, सारा अपमान पीकर भी पापा जी-जान से दीदी के लिए बर खोजने में जुट गये थे। हायर मेकंडरी की परीक्षा में निवृत्त होकर घर पहुँची थी, तो पापा ने जन्म-कुंडलियों की कॉपी करने का काम मुझे सौंप दिया था। रोज़ की डाक में कम-से-कम एक पत्र तो ऐसा होता, जिसमें किसी नये रिश्ते का पता-ठिकाना होता, या कोई फोटो या जन्म-कुंडली होती। दस नामों में एक-दो लड़के ऐसे निकलते, जिन्हें दीदी के श्रेष्ठोप्य समझा जाता। उन लोगों के ही फोटो मंगाये जाते।

मेरे जन्मदिन का वहाना लेकर उस दिन दीदी को घर बुला लिया गया था। खाना खाते हुए पापा वितकुल महज स्वर में बोले, 'शाम को दोनो वहाँ जाकर एक फोटो सितवा आना। यादगार रहेंगी।'।

स्टूडियो में मैंने मचलते हुए कहा था, 'दीदी, एक फोटो अपनी जगह से उतरवाइए न।'।

'पापा ने मिठाकर भेजा होगा, क्यों?' उन्होंने मुझे घुंन्ते हुए पूछा। फिर हंस पड़ी और एक धारा-भा पोंज लेकर कैमरे के सामने बैठ गयी। अपनी इस सफलता पर मैं फूली न ममानी थी। पापा ने भी मुझे खुश होकर शाबाशी दी थी। रात के खाने पर भी उनका मूढ़ बहुत अच्छा रहा था। कई दिनों बाद उनके ठट्ठके, उनके सतीसके मुनाई दे रहे थे।

छोटे भैया ने तो कुटिलता में व्यंग्य भी बिना, 'आज पापा को क्या हो गया है?'

उठते हुए पापा ने कहा, 'खाना खा लो तो पांच मिनट के लिए मैं पाम आना। जरूरी काम है।'।

'जी, बहुत अच्छा।' दीदी जैसे आज आलीनता की प्रतिफलित होने लगी थी। दीदी के पीछे-पीछे दबे पांव में वीर छोटे भैया भी लुट रहे थे। पदों की आड़ में सामं रोके खड़े रहे।

पापा की मेज पर पाच-छह फोटो पड़े हुए थे। उनमें से एक-एक करके बर्णन कर रहे थे। अंत में बोले, 'मुझे कोई अच्छा फोटो चाहिए'। मैंने सोच-समझकर मुझे बनाना। छविना दूर होते ही मैं निकल आऊंगा। इस साल मुझे यह काम कर ही देऊँ।

दीदी इतनी देर तक मूर्तिवत् बैठी सुन रही थीं। उन्होंने एक नज़र भी उठाकर उन तसवीरों पर नहीं डाली थी। पापा के चुप होते ही बोलीं, 'पापा ! इस जून में मैं कैलिफोर्निया जा रही हूँ।'

'क्या ?' हम लोगों के मुँह से भी हठात् निकल पड़ा और हम डर के मारे भाग खड़े हुए।

किसी समय पापा का सबसे बड़ा सपना था, दीदी को अमरीका भेजने का। कर्ज लेकर भी वे अपनी जिद पूरी करते। पर दीदी ने जिस तरह अपने आप सब-कुछ तय कर लिया था, उससे साफ़ ज़ाहिर था कि पापा को उन्होंने फ़ालतू सामान की तरह जीवन से अलग निकालकर फेंक दिया था।

इस धक्के से वे एकदम भीतर-ही-भीतर टूट गये थे। एकदम बूढ़े लगने लगे थे।

इस परिवर्तन को अनदेखा करके दीदी अपनी ही तैयारियों में व्यस्त थीं। दिनभर शॉपिंग में निकल जाता, सुबह-शाम मित्र-परिवारों में। कभी कोई प्रोग्राम बनता, कभी कुछ। जाने से आठ-दस दिन पहले बड़े भैया ही उन्हें घर लिवा लाये थे। पापा ने फिर कभी कुछ नहीं कहा था। सब-कुछ देखते रह गये थे। यह तो वाद में मेहता अंकल ने बताया था कि सिक्कूरिटी का प्रबंध भी पापा ने ही किया था और रुपयों की व्यवस्था भी। पर दीदी के रवैये से डरकर उसे जाहिर नहीं किया था।

और मम्मी ! वे इन दिनों कहाँ थीं ? घर के किसी कोने में जलने-वाली अगरवत्ती की तरह चुपचाप अपने अस्तित्व की सुगंध बिखेर रही थीं। पर हममें से किसी को भी उनका खयाल न था। इस तूफ़ानी दौर में भी घर अपनी सामान्य गति से चल रहा था, इसका श्रेय उन्हीं को था। दिनभर वे किचन में व्यस्त रहतीं, क्योंकि घर पर दिनभर लोगों का आना-जाना बना रहता था। इस आपाधापी के बीच भी उन्होंने दीदी के लिए एक शाल काढ़ा था, एक कार्डीगन बुना था। प्यारी-सी दो साड़ियाँ भी वे दीदी के लिए लायी थीं, पर एक छोटी-सी 'थैक्यू' के अतिरिक्त दीदी ने उसका कोई प्रतिदान नहीं दिया था।

विदावाले दिन स्टेशन पर बंधु-बांधव, मित्र-परिवारों की अपार भीड़ उमड़ पड़ी थी। उतने-से समय में हर किसी से हंस-बोल पाना बड़ा कठिन काम था। पर दीदी बड़ी चतुराई से, कौशल से यह कठिन काम अंजाम दे रही थी। अपने गुरुजनों से, सहयोगियों से हमारा परिचय करवा रही थी। किसी को पत्र लिखने का वचन दे रही थीं, किसी को कोई वस्तु भेजने का वादा कर रही थी। अजीब-सी गहमागहमी थी वातावरण में।

पापा-मम्मी भीड़ से अलग-थलग एक कोने में खड़े थे। सच तो यह है, उनके इस तरह दूर खड़े होने का भान भी हमें नहीं था। गाड़ की सीटी होते ही दीदी को सबसे पहले याद आया। उन्होंने शीघ्रता से पापा के पैर छुए और मम्मी से कहा, 'अच्छा नीरू, वाऽऽय।' और भीड़ को धीरती हुई कंपार्टमेंट तक पहुंच गयी। पापा के निःशब्द आभीर्वाधि उन तक पहुंचे भी या नहीं, कौन जाने।

गाड़ी जब चली, तब प्लेटफार्म पर कितने ही रूमाल लहरा रहे थे। मेरे हाथों में फूलमालाओं का ढेर था, जो दीदी को पहनायी गयी थी, और आँखों में आँसू।

दोनों भैया दिल्ली तक दीदी के साथ गये थे। स्टेशन में भारी मन लिये हम तीनों ही लौट आये। घर जैसे काटने को दौड़ रहा था। पिछले आठ-दस दिन तक जैसे यह शादी का घर बना हुआ था। सारी रीतक एक व्यक्ति के जाते ही विदा हो गयी।

दिनभर हम लोग अपने-अपने कमरों में कँद रहे। वही जाने की, किसी से बात करने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। रात खाने की मेज पर ही हम लोग एकत्र हुए। उतनी बड़ी मेज पर हम तीनों—बस।

पहला कौर लेते ही पापा ने कहा, 'सब्जी में नमक नहीं है क्या?'

मम्मी ने चखकर देखा, 'ओह! भूल गयी शायद।'

'यह क्या वेहदगी है!' पापा एकदम गरम हो उठे, 'एक चीज़ ढंग से नहीं दना सकती तुम? जिस दिन महाराज नहीं हो, उसी दिन खाना मिट्टी हो जाता है। किससे पूछकर छुट्टी दी उसे तुमने?'

मम्मी स्तब्ध होकर फटी-फटी आँखों से उन्हें देखती रह गयी। यह शायद पहला अवसर था, जब पापा ने मम्मी से इतनी कठोर बात कही

थी। फिर तो जैसे यह सिलसिला-सा चल पड़ा। दिनभर मेरा मन घबराया-सा रहता कि पता नहीं कब, किस बात पर पापा गरम हो उठें। उनकी इस बमबारी के सम्मुख मम्मी निरीह लगतीं। कॉलेज की डिबेट्स में हमेशा इनाम जीतनेवाली मम्मी पापा के उन तर्कहीन आरोपों का कोई उत्तर नहीं दे पाती थीं। पर लगता था, कोई चीज़ है, जो धीरे-धीरे उनके भीतर ढहती जा रही है। उनका चेहरा देखकर इसका अहसास होता था।

कितने बदल गये थे पापा! अब तो यह बात कपोल-कल्पना-सी लगती थी कि इसी आदमी की पीठ पर मैंने कभी घुड़सवारी की है, कंधे पर चढ़कर अमरूद तोड़े हैं, गुड़िया के लिए या गुब्बारे के लिए ज़िद की है। और मां की मृत्यु के बाद इसी गोद में विश्राम पाया है।

छुट्टियां समाप्त हुई और साथ ही मेरी परेशानी भी। कॉलेज की रंगीन दुनिया मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। बड़े भैया बंबई की एक बड़ी कंपनी में चले गये थे और मेरे लिए अच्छा-खासा जेब-खर्च भेज देते थे। दीदी तो मेरे लिए उपहारों की वर्षा-सी कर रही थीं और मेरे पास इंपोर्टेड कपड़ों, सेंट्स और कॉस्मेटिक्स का ढेर लग गया था। जब भी कोई उपहार आता, मुझे बड़ा संकोच होता था। एकाध चीज़ मम्मी के लिए भेजतीं, तो क्या हो जाता।

पापा के लिए भी उन्होंने वहां से सिर्फ पहुंच की चिट्ठी लिखी थी, वस। बाकी तो हमारे पत्रों में प्रणाम भर रहता। बड़े भैया ज़रूर कभी-कभार एकाध कार्ड पापा को डाल देते थे। पर अकसर मेरे पत्र में ही दो-चार लाइनें उनके लिए लिख देते। बच्चों के साथ जैसे उनका संवाद टूट-सा गया था। छोटे भैया कभी-कभार दर्शन दे जाते—पैसें के लिए। पापा न पिछला हिसाब पूछते, न कारण पूछते। वस जो मांगते, वह हाथ में रख देते। बाप-बेटों में जैसे वस जरूरत भर का ही संबंध रह गया था।

मेरी बहुत इच्छा थी, होस्टल ज्वाइन करने की। दो साल तक होस्टल में रहने के बाद घर पर अच्छा नहीं लगता था। फिर कॉलेज होस्टल का जीवन कुछ स्वच्छंदता से जीने की भी आशा थी। कम-से-कम स्कूल जैसी छोटी-छोटी बंदिशें तो वहां नहीं होतीं। पर मम्मी ने मुझे रोक

लिया। बोली, 'खाली घर काटने को दौड़ता है। तुम रहोगी, तो कुछ रौनक रहेगी।'।

मजदूरन मुझे रह जाना पड़ा। रौनक तो खैर मेरे बलबूते पर क्या होती, पर लगा, मम्मी अकेलेपन से नहीं, पापा से खौफ खाने लगी है। इसीलिए अपना मनोबल बनाये रखने के लिए मेरा सहारा लिया जा रहा है। दिन-पर-दिन इसी एकरसता में बीत रहे थे और महीनों की शकल में बदल रहे थे।

महमा एक दिन लगा कि इस मुर्दा माहौल में भी कुछ हलचल हो रही है। कुछ रौनक, कुछ गहमा-गहमी हो रही है। मालूम हुआ, पापा की नयी पुस्तक का विमोचन समारंभ है। खूबसूरत कार्ड्स छपकर आ गये थे, जिन पर मोटे अक्षरों में पुस्तक का नाम चमक रहा था— 'वैदकालीन भारत की सांस्कृतिक संपदा'। पापा की इससे पहले भी दो-तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई थी, पर उनके प्रकाशन-समारोह की मुझे याद नहीं थी। शायद इतने बड़े पैमाने पर कुछ हुआ भी नहीं था। इस बार तो सचमुच एक उरसव का-सा वातावरण था। मैंने बड़े भैया को सूचित कर दिया था और उनका बघाई का तार भी ठीक समय पर पहुँच गया था। लेकिन छोटे भैया जान-बूझकर 'टिड् काल्स' देखने निकल गये थे। उनके जाने से बैसे कोई हानि भी नहीं हुई थी। पापा के डेरो विद्यार्थी काम में जुट गये थे। बैठने की व्यवस्था से लेकर प्लेटें सजाने तक का काम उन्हीं लोगो ने किया था।

शाम को मम्मी एक रेशमी चादर की साड़ी और ढीली-सी छोटी ढालकर बैठ गयी। मैं इतना कहती रह गयी, पर न उन्होंने कपड़े बदले, न हेयर स्टाइन। बड़ी मुश्किल से ज़िद करके एक बड़ा-सा पीला गुलाब उनके वालों में लगा पायी मैं, पर थोड़ी देर बाद देखा, वह भी नदारद था। मुझे देखकर अपराधी भाव से बोली, 'ठीक से पिन नहीं किया था क्या? पता नहीं, कहाँ गिर गया।'।

मैं मुँह फुलाकर बैठ गयी। जब उन्हें ऐसे ही अच्छा लगता है, तो ठीक है। मुझे क्या गरज पड़ी है! पर गुस्से का उबाल धीरे-धीरे कम होने लगा, तो जैसे इस विराग का कारण मेरी समझ में कुछ-कुछ आने लगा।



पिछले महीने वार्षिकोत्सव पर मम्मी-पापा को मैं खींचकर कॉलेज ले गयी थी। मुझे चार पुरस्कार मिलने थे, इसीलिए पापा मेरा अनुरोध टाल नहीं पाये थे।

कॉलेज कैम्पस में प्रवेश करते ही सहेलियों ने मुझे घेर लिया था, 'तेरी दीदी कब आयी रे अमरीका से? छुट्टी पर आयी है, या हमेशा के लिए आ गयी है?'

'घट् पगली ! ये तो उसकी मम्मी हैं।' किसी ने बताया था।

'हाय मम्मी ?' वह चीखी थी, 'हाय राम ! कितनी यंग लगती हैं !'

'स्टेप मदर हैं।' कोई फुसफुसाया था।

'सच्ची ? कितनी स्वीट हैं न !'

इस बातचीत से मैं संकोच से भर उठी थी। सचमुच मम्मी उस दिन बड़ी 'स्वीट' लग रही थीं। प्याजी रंग की बनारसी साड़ी में उनका गोरा रंग निखर आया था। मेरी ज़िद पर उन्होंने अपना बारीक मोतियोंवाला सेट पहन लिया था। उनका सजा-संवरा व्यक्तित्व देखनेवालों को बांधे ले रहा था... और उनकी तुलना में पापा एकदम बूढ़े लग रहे थे।

पापा ने घर पहुंचने तक भी सन्न नहीं किया। टैक्सी में बैठते ही बोले, 'कितना ज्यादा मेकअप किया है तुमने आज। जरा सलीके से साज-सिगार किया करो। अब तुम कॉलेज में पढ़नेवाली लड़की तो नहीं हो।'।

अंधेरे में मम्मी का चेहरा नहीं देख पायी मैं, पर बार-बार यही लगता रहा, पापा यह सब मेरे सामने न कहते तो अच्छा था।

उस प्रसंग को याद करके अपने ऊपर ही खीज उठी मैं। क्यों बार-बार ज़िद करती हूं मैं; जबकि मालूम है, पापा को यह सब जरा अच्छा नहीं लगता।

शाम से ही मेहमान जुड़ने लगे। प्रिंसिपल साहब थे, कुछ पापा के सहयोगी थे, कुछ मित्र, कुछ विद्यार्थी। चालीस-पचास लोगों का मजमा था। छत पर ही सब लोगों के बैठने की व्यवस्था की गयी थी, जिसे पापा के विद्यार्थियों ने दिनभर बैठकर सजाया था।

प्रिंसिपल साहब की अध्यक्षता में समारोह प्रारंभ हुआ। धुआंधार

भाषण हुए। मेरे पल्ले कुछ नहीं पड़ा। वस, इतना समझ में आ रहा था कि पापा की तारीफ हो रही है। और अंत में पुस्तक का विमोचन प्रिनिपल साहब के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। पापा ने वह प्रति बड़े ही विनय के साथ उन्हें भेंट की। ताली की गड़गड़ाहट से आकाश गूँज उठा।

कुछ ही देर में पुस्तक की प्रतियां मेहमानों के हाथों में घूम रही थी। तीस रुपये मूल्य की वह भारी-भरकम पुस्तक थी, कई दुर्लभ चित्रों के साथ। पन्ने उलटते हुए मेरी दृष्टि 'समर्पण' वाले पृष्ठ पर टिक गयी :

शौला को,  
जिसका स्नेहमय सान्निध्य  
मेरी प्रेरणा था,  
जिसकी पवित्र स्मृति  
मेरा सबल है।

इतना गुस्मा आया। इस 'हिप्पोक्रेसी' की भला क्या जरूरत थी। अपनी दिवंगत गत्नी के प्रेम का ढिंढारा पीटना क्या इतना आवश्यक था? मां का स्नेहमय सान्निध्य! बाह! कम-से-कम पुस्तकों के संबंध में तो मां की भूमिका स्नेहमयी नहीं थी। पापा के पढ़ने वाले कमरे में वे बहुत ही कम जाती थी। एक तो एकांत के लिए वह ऊपर बनवाया गया था और विद्यार्थियों की सुविधा के लिए जीना भी बाहर की ओर से ही था। दिनभर अपने पढ़ने-लिखने में ही व्यस्त रहने वाले पापा पर वे अक्सर खीज भी उठती थी—'घर चलाने का ठेका क्या मैंने अकेले ही ले रखा है?'

अपने विद्वान् पति पर नाज उन्हें जरूर था। पापा का भाषण सुनने जरूर जाती और गंभीर मुद्रा बनाकर स्टेज पर बैठी रहती। मन्त्रमुग्ध श्रोताओं को देखना उन्हें अच्छा लगता। इसी तरह पापा की पुस्तकों में लेखक की जगह छपा हुआ पति का नाम भर पढ़कर वे कृतार्थ हो जाती थी। उन्हें पढ़ने की कभी उन्होंने हिम्मत नहीं की। पापा को उनसे किस तरह की प्रेरणा मिलती थी, वे ही जानें। लेकिन अगर ऐसा था, तो पढ़ने भी तो उनकी पुस्तकें निकली थी। उनमें मा को याद क्यों नहीं किया

गया ? या शायद इसके लिए 'स्वर्गीय' की उपाधि जरूरी है ।

और मां की पवित्र स्मृति ? इतना बड़ा मजाक कैसे कर सके पापा ! इतनी ही उस स्मृति में कशिश थी, तो चार-चार वच्चों के होते हुए भी दूसरा विवाह कैसे कर सके वे ? और वह भी अपने से सोलह वर्ष छोटी, अपनी विद्यार्थिनी के साथ !

विवाह कैसी भी परिस्थिति में हुआ हो, पर मम्मी ने अपना कर्तव्य पूरी तरह निभाया था । इस पुस्तक का असली श्रेय उन्हीं को जाता था । शादी से पहले और शादी के बाद भी इस पुस्तक पर उन्होंने अपार मेहनत की थी । लायब्रेरी से पुस्तकें जुटायी थीं, रात-रात जागकर नोट्स तैयार किये थे, टाइपिस्ट के साथ घंटों दिमाग खपाया था । कई-कई बार प्रूफ देखे थे । परंतु पूरी पुस्तक में उनका कहीं नाम भी नहीं था । कृतज्ञता के दो शब्दों की हकदार तो वे भी थीं ।

प्लेटें लगाते हुए मैंने कहा, 'मम्मी ! आपके साथ बड़ा अन्याय हुआ है ।'

'कैसा अन्याय ?'

'समर्पण तो आपके नाम होना चाहिए था ।'

'इससे क्या फर्क पड़ता है । बड़ों का हक तो उन्हें देना ही चाहिए ।'

'और काम सारा जो आपने किया है ।'

'तो क्या हुआ ? काम तो मैंने विद्यार्थी की हैसियत से किया है । अब ये इतने लोग नहीं कर रहे हैं ? वस, मेरा भी अंशदान ऐसा ही है । और उन्होंने लिखा तो है—मेरे छात्रों ने बहुत सहायता दी है ।'

मन हुआ, जबरदस्ती इस औरत के दिल में झांककर देखूं । क्या सचमुच ही कहीं जरा-सी भी खरोच तक नहीं आयी है !

रणजीत से पहली भेंट इसी पार्टी में हुई थी । पापा ने ही परिचय करवाया था, 'वकुल, ये हैं रणजीत बहल । मेरे बहुत अच्छे विद्यार्थियों में से थे । अब आइ. ए. एस. हैं और यहां डिप्टी कलेक्टर बनकर आये हैं ।'

'सर, आप कौन हैं ?'

'अरे, इसे नहीं पहचाना ! यह अपनी वकुल है । उस समय बहुत

छोटी रही होगी शायद ।’

‘अच्छा ! बकुलजी, आप पढती हैं ? कहाँ ? किस इयर में ? क्या विषय हैं ?’

वे प्रश्न पूछते रहे, मैं उत्तर देती रही । पर उस भव्य व्यक्तित्व के मम्मुख बार-बार सिकुड़ी-सिमटी जा रही थी ।

‘अच्छा तो, बकुलजी, इजाजत है ?’ जाते हुए उन्होंने हाथ जोड़कर कहा, तो मैं अभिभूत हो गयी । पहली बार किसी ने मुझे इतना सम्मान दिया था । घर-बाहर सभी के लिए मैं अब तक खिलंदड़ी बकुल ही थी ।

‘अच्छा नीरू, चलता हू । कभी घर पर आओ न !’

‘तुम भी आना न मिसेज को लेकर । आज ही ले आते, तो परिचय हो जाता ।’

‘आज तो वह बोर हो जाती, इसलिए नहीं साया । किसी दिन जरूर लेकर आऊंगा । अच्छा !’ और हम सबको बड़ी अदा से नमस्कार करते हुए वे चले गये ।

‘आप जानती हैं इन्हें ?’ मैंने मम्मी से पूछा ।

‘हा, हमारे पड़ोसी थे । बाद में बी. ए. भी हम लोगी ने साथ ही में किया ।’ उन्होंने बतलाया ।

मुझे बड़ी खुशी हुई कि यह सज्जन मम्मी के परिचित हैं । तब तो कई बार मुलाकात हो सकेगी । पापा के यू तो डेरों विद्यार्थी थे, पर अधिकतर बाहर ही से लौट जाते थे । घर का अनुशासन ही ऐसा था । कई अक्खड़ किस्म के लोग ‘भाभी-भाभी’ की रट लगाते हुए किचन तक पहुँच भी जाते थे, पर पापा को यह अच्छा नहीं लगता था । मम्मी को बाद में बहुत कुछ सुनना पड़ता था । मा के जमाने में जो घातें सहज-स्वाभाविक थी, अब एकदम वर्जित-सी हो गयी थी ।

रणजीत के साथ यह मुश्किल नहीं थी । वे कई बार आये—कभी अकेले, कभी मिसेज को लेकर । उनकी मुढ़िया-सी खूबसूरत बीबी मुझे एकदम बेवकूफ-सी लगती । बेबी, किचन, पिक्चर्स और नौकर—ये चार उसके प्रिय विषय थे । शेष समय वह चुप बैठती रहती । बोलने-बतियाने का सारा जिम्मा मैं ले लेती । मम्मी तो अकसर चाय-बाय लगवाती

रहतीं ।

पापा कॉलेज से लौटकर सहज भाव से पूछते, 'रणजीत आया था शायद आज।' मैं भी उसी सहज भाव से उत्तर दे देती। पर कुछ दिनों के बाद मुझे उन प्रश्नों में जासूसी की गंध आने लगी। शायद मेरे मन का चोर ही मुझे डरा देता था।

एक दिन तो हृद हो गयी। पापा ने लौटते ही अजीब-से स्वर में पूछा, 'रणजीत फिर आया था आज !'

'नहीं तो।'

'फिर यह सिगरेट कैसी पड़ी हुई है यहां ?'

'मुझे क्या पता।'

'मक्कार लड़की, झूठ बोलती है।' और पापा ने तड़ से एक तमाचा जड़ दिया मुझे।

पलभर को मैं तो काठ होकर रह गयी। आंसू तक सूख गये मेरे। मेरी याद में पहली बार पापा वे मुझ पर हाथ उठाया था और वह भी बिना किसी कारण के। और तभी किचन से मम्मी दौड़ी आयीं, 'क्या पूछना है, मुझसे पूछिए। उसे क्यों परेशान कर रहे हैं। बेचारी अभी-अभी कॉलेज से लौटी है।'

पापा चुप !

'रणजीत के बारे में पूछना है न ! हां, वह आया था। यह जरा-सी बात जानने के लिए इतने घुमावदार रास्ते से जाने की जरूरत नहीं है। मुझसे पूछ लिया होता...और इतनी बड़ी लड़की पर हाथ उठाते हुए शर्म आनी चाहिए आपको। बड़े 'कल्चर्ड' बनते हैं !' और मम्मी जिस तरह आयी थीं, उसी तरह झमाझम भीतर चली गयीं।

पापा हतप्रभ-से खड़े रह गये। शायद मेरी तरह वे भी मम्मी के इस रूप को देखकर सहम गये थे।

रणजीत बेचारे को पता हां नहीं था कि उन्हें लेकर इस तरह का कोई कांड हो गया है। वे पहले की ही तरह आते रहे। अकसर दफ्तर से सीधे ही आ जाते, क्योंकि वाद में आने का मतलब होता, बीबी को भी साथ लाना। उस दिन के बाद मैंने उनके सामने पड़ने की हिम्मत नहीं

की। एक निरर्थक-सी ग्लानि मन में भर गयी थी। पर जब भी उनकी मोटर का हॉर्न सुनती, तो अपना कमरा छोड़कर ऐसी जगह आकर बैठ जाती, जहाँ से उनकी आवाज़ सुनाई देती रहे और एकाध श्रवक भी मिलती रहे। एक अजीब-भा पागलपन सवार था मुझ पर। दिनभर नीरज की कविताएं पढ़ा करती, तलत की गजलों में घोषी रहती। 'गुनाहों का देवता' तो पता नहीं, कितनी बार पढ़ गयी थी मैं। जब थोमती रणजीत भी माथ होती, तो मुझे पर्दे से बाहर आना ही पड़ता। वे अक्सर गाने की फरमाइश कर बैठतीं, क्योंकि बानचीन में तो उन्हें रम नहीं आता था। तब मैं लता की भावप्रधान आवाज़ की नकल उतारते हुए ऐसे गीत चुन लेती, जो मेरी मनोदशा को व्यक्त कर सकें, जैसे 'तू प्यार करे या ठुकराये, हम तो हैं तेरे दीवानों में', या 'हम प्यार में जलनेवालों को चैन कहा, आराम कहा', या 'हाले दिल इस तरह सुनाया न गया' आदि।

माचें का महोना था। परीक्षा की तैयारियों के लिए छुट्टियां ही चुकी थी। पुस्तकों का अचार सामने रखकर मैं वी. ए. फाइनल की तैयारी में व्यस्त थी। तभी उम परिचित हॉर्न को सुनकर मेरे कान खड़े हो गये। कैलेंडर पर नज़र दी डायी, तो पता चला, आज दूसरा शनिवार है। तभी श्रीमान दोपहर में पधारे हैं। छूट्टी है, सब तो जरूर मिसेज माथ में होंगी। पढ़ाई-बढ़ाई को गोली मारकर मैं डायनिंग रूम में अपनी परिचित कुर्सी पर बैठकर आइट लेने लगी। बड़ी देर तक मिसेज रणजीत की पतली तीखी आवाज़ की प्रतीक्षा करती रही, पर विश्वास हो गया कि वे अकेले ही आये हैं। मतलब मेरे बाहर जाने का कोई उपाय नहीं था। मन मारकर बैठो रही। रणजीत कह रहे थे, 'तुम जानती हो नीरू, मैं यहाँ क्यों आता हूँ। अपनी छटीन लाइफ में जब ऊब जाता हूँ तब यहाँ आकर कुछ देर को फ्रेश हो जाता हूँ। बस।'

'वां तो ठीक है, जीतू, लेकिन...'

'लेकिन क्या? क्या सर एतराज करते हैं?'

'सिर्फ उन्हीं के एतराज की बात होती, तो नुमसे कभी कहती भी नहीं

‘फिर...?’

‘जीतू ! मुझे वकुल का डर लगता है । मेरा मतलब...वकुल के लिए डर लगता है ।’

(वकुल ! माय गोंड)

‘वकुल ने क्या किया ? वह तो बड़ी प्यारी लड़की है ।’

‘वह लड़की तुम्हारे पीछे पागल हुई जा रही है और उसे रोकने का कोई उपाय मेरे पास नहीं है ।’

‘लेकिन वह तो जानती है, मैं शादीशुदा हूँ ।’

‘इससे क्या फर्क पड़ता है । भावनाओं का ज्वार उठता है, तब ये छोटी-मोटी बातें तिनके की तरह पता नहीं कहां वह जाती हैं ! भावुक लड़कियों के साथ यही तो ट्रेजेडी होती है । वकुल जिस वातावरण में पल रही है, उसमें तो यह आवेग खतरे की सीमा तक पहुंच सकता है । यह तो गनीमत है, कि सामने तुम जैसी शख्सियत है, नहीं तो ड्राइवर, माली, रसोइया...प्रेम फिर पात्र-सुपात्र कुछ भी नहीं देखता ।’

‘छी: नीरू ! कैसी बातें कर रही हो आज ।’

इससे अधिक सुनना मेरे भी वश में नहीं था । हांफते कदमों से आकर अपने विस्तर पर पड़ रही मैं, सामने दीवार पर मां का बड़ा-सा चित्र लगा था । आज मां होती, तब भी शायद इतनी बारीकी से मेरा मन नहीं पढ़ पाती । मां के विचारों की दुनिया भी उन्हीं की तरह सीधी-सरल थी ।

‘वकुल !’

‘आयी, मां !’ और एकदम याद आया मां अब कहां है । यह तो मम्मी की आवाज है । ड्राइंग-रूम के दरवाजे में खड़े होकर पूछा, ‘मुझे बुलाया, मम्मी ?’

‘हां, महाराज शायद आया नहीं अभी तक । कॉफी बना सकोगी दो कप ?’

‘जी !’

‘वकुल !’ मैं जाने लगी, तो रणजीत ने रोक लिया, ‘वकुल, तुम इन्हें मम्मी क्यों कहती हो । मां कहा करो । ज्यादा नेचुरल लगता है । अभी तुमने पुकारा था न !’

‘नहीं-नहीं, मम्मी ही ठीक है।’ मम्मी की आवाज में अनावश्यक तल्खी थी।

किचन की ओर जाते हुए मैंने सुना, वे कह रहे थे, ‘नीरू ! मैं सोचता हूँ, बच्चे तुमसे भा कहेंगे, तो ज्यादा इंटोमेट हो सकेंगे, जस्ट ट्राई।’

‘नो।’

‘लेकिन क्यों?’

‘मैं इन बच्चों की भा बनकर दस घर में नहीं आयी हूँ।’

‘तो?’

‘इनके पिता के रंगमहल में एक बौद्धिक बलवाली था, मेरी नियुक्ति वहीं हुई है।’

‘नीरू, इसका मतलब है, तुम खुश नहीं हो!’

‘मैं दुःखी भी नहीं हूँ। परेगान मत होओ।’

कॉलेज से लौटकर देखा, छोटे भैया वरामदे में विराजमान हैं।

‘अरे, आप कब आये नागदा से?’

‘सुबह आठ बजे।’

‘एकदम आ गये। कोई सूचना भी नहीं दी।’ दरअसल खुशी के मारे मुझसे बोलते ही नहीं बन रहा था।

‘सूचना देता, तो तुम लिवाने आती स्टेशन पर?’ उन्होंने चुटकी ली।

‘अच्छा बताइए, कैसे आये हैं?’

‘बस, ऐसे ही। नहीं तो यहां कौन हमारी अम्मा बँठी है, जो तीज-त्योहार पर बुला भेजेंगी। इसीलिए जब मर्जी हुई, चला आया।’

‘मैं तो बँठी हूँ अभी, फिर राखी पर क्यों नहीं आये? मेरा एक साडी का मुकमान हो गया।’

‘अब ले लेना, बस। चल, ला दिखा तो, क्या-क्या पढ़ती है?’ और मेरे हाथ में ‘चितामणि’ और ‘धनानंद’ लेकर देर तक उलट-पुलट करते रहे। फिर एकाएक बोले, ‘अच्छा बकुल, यह तो बता मौसम का क्या हाल है?’

‘मौसम?’ मैंने सोचने की-सी मुद्रा बनायी, ‘तापमान साधारण से कुछ



ज्यादा ही रहता है। अकसर घूलभरी आंधियां चलती रहती हैं। और कोई ताज्जुब नहीं, शाम को गरज के साथ छोटे भी पड़ें।'

'तब तो बड़ी मुश्किल है।' उन्होंने भी बड़ी गंभीर मुद्रा बनाकर कहा और हम दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। हंसने का दौर समाप्त होने पर मैंने कहा, 'आपको मौसम की चिंता क्यों होने लगी। अब तो भगवान की दया से आपकी जेब भारी है।'

'पैसों की बात नहीं है, पगली !'

'फिर ?'

'दरअसल मैं शादी करना चाहता हूं।'

'शादी !' मैं चीखी, 'अभी से ?'

'अभी से का क्या मतलब ? मैं तेईस का हो चुका हूं।' उन्होंने इस अंदाज में कहा, जैसे चालीस पार कर गये हों।

'पर बाबा, अभी आपकी लाइन क्लीयर कहां है ? अभी तो बड़े भैया बैठे हैं ?'

'बैठने को तो अभी दीदी भी बैठी हैं। इन लोगों के भरोसे रह गया, तो ज़िदगी भर कुआंरा रह जाऊंगा।'

'च्-च् ! ऐसी भी क्या वेसब्री है ! भला बताइए, आप वहां नौकरी करने गये थे, या प्रेम करने ?' मैंने कहा। लेकिन उसकी सिफारिश करना मंजूर कर लिया, क्योंकि वे वाकई सीरियस लग रहे थे। मेरे आश्वासन से निश्चित होकर वे मित्रों से मिलने चल दिये।

जिम्मेदारी ले तो ली बड़े मजे से, पर बाद में खुद ही डरने लगी कि यह विषय घर में उठाऊंगी कैसे। मौसम के बारे में मैंने मजाक नहीं किया था। वातावरण सचमुच घर का इसी तरह का हो गया था। कल शाम से तो मैं सहमी-सहमी-सी ही थी कि पता नहीं कब विस्फोट हो जाए।

मम्मी चार-पांच दिनों से एक टाइपिस्ट की प्रतीक्षा में थीं। यह लड़का उनके पिताजी के ड्राइवर का पुत्र था। वे मदद के रूप में उसे कुछ काम देना चाहती थीं। सारी बातें तय हो गयी थीं और वह भला आदमी गोल कर गया था। कल जब हम लोग पक्कर देखकर लौट रहे थे, तो 'यशवंत' के फाटक पर ही वह मिल गया। मम्मी तो उसे देखते ही बरस पड़ीं। वह

बड़ी कठिनाई में समझा पाया कि वह तो आया था पर माह्व ने ही उसे लौटा दिया था। सुनकर मम्मी का चेहरा तमनमा आया था। मारे रान्ने मुझे डर लगा रहा कि आज कुछ होकर रहेगा। ईश्वर की कृपा में कुछ हुआ तो नहीं, पर वातावरण में कुछ तनाव-सा जरूर था।

फिर भी माह्वस करके मैंने खाने की मेज पर वह बान छेड़ ही दी। छोटे भैया जान-बूझकर बाहर ही रह गये थे।

‘मुनो, यह फोटो देखो तुमने।’ बड़ी देर तक उम फोटो का निरीक्षण करने के बाद पापा ने उसे मम्मी की तरफ बढ़ा दिया था, ‘अब्रय हम लड़की से शादी करना चाहता है। कैसी है?’

‘आप लोगों को पसन्द आनी चाहिए, मेरा क्या है।’ मम्मी ने बेरग़ी से कहा।

‘बाह भई, तुम्हारा भी तो हक है।’

‘मेरा हक?’ मम्मी ने कड़वे स्वर से कहा, ‘अपनी पसंद का टाइपिस्ट तक तो मैं रख नहीं सकती। आपके बेटे के लिए वह पसंद करना तो बहुत बड़ी बात है।’

‘अब यह कहा की बात कहा में जा रही हो तुम?’

‘क्यों? मेरे अधिकार की बान नहीं हो रही थी क्या?’ मम्मी ने सीधा प्रश्न किया।

पापा परेशान हो उठे। थके स्वर में बोले, ‘मुसीबत तो यह है नीरू कि तुम ऐसे आदमी इकट्ठा कर लेती हो, जो मेरी ग़िब से मेन नहीं खाते।’

‘नहीं, मुसीबत तो यह है, बल्कि हकीकत है यह कि आप नहीं चाहते कि मेरी बीसिस कभी पूरी हो। पिछले चार-पांच सालों से मैं यही देख रही हूँ।’

‘बदा बकनी हो!’

‘ठीक तो कह रही हूँ मैं। आप चाहते हैं कि बस मैं आपकी मेन्टरी बनी रहूँ। आपके पत्रों का, पुस्तकों का, घोड़ी का, दूध बाले का हिमाव रखती फिरूँ।’

‘तुम कोई अहसान नहीं कर रही मुझ पर। दुनिया की आम औरतें घर में यही सद-कुछ करती हैं।’

ज्यादा ही रहता है। अकसर धूलभरी आंघियां चलती रहती हैं। और कोई ताज्जुब नहीं, शाम को गरज के साथ छींटे भी पड़ें।'

'तब तो बड़ी मुश्किल है।' उन्होंने भी बड़ी गंभीर मुद्रा बनाकर कहा और हम दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े। हंसने का दौर समाप्त होने पर मैंने कहा, 'आपको मौसम की चिंता क्यों होने लगी। अब तो भगवान की दया से आपकी जेब भारी है।'

'पैसें की बात नहीं है, पगली!'

'फिर?'

'दरअसल मैं शादी करना चाहता हूं।'

'शादी!' मैं चीखी, 'अभी से?'

'अभी से का क्या मतलब? मैं तेईस का हो चुका हूं।' उन्होंने इस अंदाज में कहा, जैसे चालीस पार कर गये हों।

'पर बाबा, अभी आपकी लाइन क्लियर कहां है? अभी तो बड़े भैया बैठे हैं?'

'बैठने को तो अभी दीदी भी बंठी हैं। इन लोगों के भरोसे रह गया, तो जिंदगी भर कुआंरा रह जाऊंगा।'

'च्-च्! ऐसी भी क्या बेसब्री है! भला बताइए, आप वहां नौकरी करने गये थे, या प्रेम करने?' मैंने कहा। लेकिन उसकी सिफारिश करना मंजूर कर लिया, क्योंकि वे वाकई सीरियस लग रहे थे। मेरे आश्वासन से निश्चित होकर वे मित्रों से मिलने चल दिये।

जिम्मेदारी ले तो ली बड़े मजे से, पर बाद में खुद ही डरने लगी कि यह विषय घर में उठाऊंगी कैसे। मौसम के बारे में मैंने मजाक नहीं किया था। वातावरण सचमुच घर का इसी तरह का हो गया था। कल शाम से तो मैं सहमी-सहमी-सी ही थी कि पता नहीं कब विस्फोट हो जाए।

मम्मी चार-पांच दिनों से एक टाइपिस्ट की प्रतीक्षा में थीं। यह लड़का उनके पिताजी के ड्राइवर का पुत्र था। वे मदद के रूप में उसे कुछ काम देना चाहती थीं। सारी बातें तय हो गयी थीं और वह भला आदमी गोल कर गया था। कल जब हम लोग पिकचर देखकर लौट रहे थे, तो 'यशवंत' के फाटक पर ही वह मिल गया। मम्मी तो उसे देखते ही वरस पड़ीं। वह

बड़ी कठिनाई से समझा पाया कि वह तो आया था पर माह्न ने ही उसे लौटा दिया था। सुनकर मम्मी का चेहरा तमतमा आया था। मारे राम्ने मुझे डर लगा रहा कि आज कुछ होकर रहेगा। ईश्वर की कृपा से कुछ हुआ तो नहीं, पर वातावरण में कुछ तनाव-भा जरूर था।

फिर भी माह्न करके मैंने खाने की मेज पर वह बान छेड़ ही दी। छोटे भैया जान-बूझकर बाहर ही रह गये थे।

‘मुनो, यह फोटो देखो तुमने।’ बड़ी देर तक उस फोटो का निरीक्षण करने के बाद पापा ने उसे मम्मी की तरफ बढ़ा दिया था, ‘अजय इस लड़की से शादी करना चाहता है। कैमो है?’

‘आप लोगों को पसन्द आनी चाहिए, मेरा क्या है।’ मम्मी ने बेमज़ी से कहा।

‘वाह भई, तुम्हारा भी तो हक है।’

‘मेरा हक?’ मम्मी ने कड़वे स्वर में कहा, ‘अपनी पसंद का टाइपिस्ट तक तो मैं रख नहीं सकती। आपके बेटे के लिए बहू पसंद करना तो बहुत बड़ी बान है।’

‘भव यह कहा की बात कहा ने जा रही हो तुम?’

‘क्यों? मेरे अधिकार की बान नहीं हो रही थी क्या?’ मम्मी ने सीधा प्रश्न किया।

पापा परेशान हो उठे। उनके स्वर में बोले, ‘मुसीबत तो यह है नीरू कि तुम ऐसे आदमी इकट्ठा कर लेती हो, जो मेरी रचि से मेम नहीं खाते।’

‘नहीं, मुसीबत तो यह है, बल्कि हकीकत है यह कि आप नहीं चाहते कि मेरी भीतिस कभी पूरी हो। पिछले चार-पाच सालों से मैं यही देख रही हूँ।’

‘क्या बकती हो!’

‘ठीक तो कह रही हूँ मैं। आप चाहते हैं कि वस मैं आपकी मेकेंटरी बनी रहूँ। आपके पत्रों का, पुस्तकों का, धोबी का, दूध वाले का हिमाव रखती फिरूँ।’

‘तुम कोई अहसान नहीं कर रही मुझ पर। दुनिया की आम औरतें घर में यही सब-कुछ करती हैं।’

लेकिन मैं तोआम औरतों की तरह नहीं हूँ । इसलिए तो लीक से हटकर चली हूँ । नहीं तो आम औरतों वाला रास्ता मेरे लिए भी खुला था ।'

‘पछता रही हो अब ?’

अच्छा हुआ, मम्मी ने इस बात का उत्तर नहीं दिया और वहीं पटाक्षेप हो गया । नहीं तो मेरी तो मुसीबत आ गयी थी । उन दोनों को तो मेरी उपस्थिति का होश नहीं था और मुझसे न उठते वन रहा था, न बैठना अच्छा लग रहा था ।

शाम को छोटे भैया ने उत्सुकता से पूछा था, तो मैंने मुसकराकर छोटा-सा जवाब दे दिया था, ‘थोड़ा तो धीरज रखो, बाबा । आज तो अर्जी पेन हुआ है ।’

छोटे भैया खिसियायी-सी मुसकराहट के साथ बोले, ‘उसके मां-बाप बड़े घोंचू किस्म के हैं, इसीलिए । नहीं तो मैं तो सीधे कोर्ट से शादी करता और यहां तार से खतर भेज देता । वस । नो फॉरमेलिटी ।’ छोटे भैया ऐसा कर भी लेते, तो किसी को आश्चर्य नहीं होता ।

पापा पता नहीं, कब जाकर मेरठ से बुआजी को लिवा लाये और घर में शादी-व्याह की चर्चाएं जोर-शोर से चल पड़ीं । पापा की बातों से लगा कि इस बार वे दोनों लड़कों की शादी करके रहेंगे । छोटे भैया की तो कोई चिन्ता नहीं थी, लेकिन बड़े भैया के लिए तो बहू की तलाश अभी बाकी थी ।

बुआजी माल फेरते हुए मुझसे कहतीं, ‘अरी, तेरा बाप मेरे पास आया और बोला, अजय के लिए एकाध अच्छी-सी लड़की देखनी है । लो, सुन लो, लड़कियां क्या बाजार में मिलती हैं ? अरे तुम चार लोगों में उठो-बैठोगे नहीं, बेटों की बात नहीं करोगे, तो कौन जानेगा कि तुम्हारे यहां व्याहने को लड़के बैठे हैं ।’

कभी रसोई में बैठकर महाराज से सुख-दुःख की चर्चा चलाते हुए कहतीं, ‘भैया रे, वो तो पेट जाये की ममता ही कुछ और होती है । अब इन बच्चों की मां होती, तो बताओ क्या अब तक कुंवारे बैठे रहते ये ।

वह लड़की क्या मेम बनकर विलायत चली जाती !'

कभी पापाजी शेष करते होने और वही बैठकर छालियां कतरती हुई बुआ जी कहती, 'विशन रे, मेरी माने तो इस छोकरी को भी लगे हाथ निबटा ही दे। आजकल की लड़कियों का कोई ठिकाना है! कब किसका हाथ पकड़कर चल दें और फिर तेरे यहां तो कोई देखने वाला भी नहीं है।' इन वाक्यों में व्यंग्य की दोहरी मार होती मम्मी पर। लेकिन वे किसी बात का उत्तर नहीं देती। चुपचाप अपना काम करती रहती। या कमरे में बैठकर किताब पढ़ती रहती। बुआजी के आ जाने से रसोई का क्षेत्र उनके लिए निषिद्ध हो चुका था। उन्हें इस बात का बुरा लगा भी हो, तो उन्होंने कभी जाहिर नहीं किया। बुआजी की गोनावारी अकसर चलती ही रहती। पर यह तो मानना होगा कि जिस कार्य-विशेष के लिए उन्हें लाया गया था, उसमें वे सिद्धहस्त थीं। महीने भर के अंदर ही दूरदराज से बधु-पिताओं की चिट्ठिया, फोटो और कुंडलिया आने लगीं। बुआजी के नाते-रिश्तेदारों का जाल भारतीय रेलवे की तरह पूरे देश में फैला हुआ था शायद। उनकी प्रसारण-व्यवस्था भी बड़ी ही कार्यक्षम जान होती थी। तभी तो सब लोग जान गये थे कि उनके विद्वान् प्रोफेसर भाई का नुदर, सुदृढ़, एक हजार रुपये महीना पानेवाला इजीनियर बेटा शादी के योग्य हो गया है।

मुझसे ही उन्होंने बड़े भैया को पत्र लिखवाया कि फौरन एक महीने की छुट्टी लेकर आ जाओ। ना-नुकर करने की गुंजाइश नहीं है। तुम्हारी बहन से छोटे की शादी रुकी हुई है। और आश्चर्य की बात, बड़े भैया सचमुच छुट्टी लेकर आ गये। विजय-गर्व से उल्लसित होती हुई बुआजी बोली, 'देखो, आ गया न राह पर। अब कोई लडका तुमसे खुद आकर बहेगा कि मेरी शादी करो।' बुआजी के भाषणों का एल० पी० दिनभर चलता रहना। मुझे लगता कि किसी दिन मैं पागल हो जाऊंगी। एक दिन मम्मी ने मैंने कहा, तो मूखी हंसी के साथ बोली, 'मेरे बारे में कभी सोचा है!'

तब लगा, सचमुच अगर पागल होने की नीवत आयी है, तो मम्मी की। कितना सुनाया जाता है दिनभर उन्हें। कभी उनकी कोर्ट मंरेज का मखौल उड़ाया जाता है, कभी मा के रूप-रंग, आचार-व्यवहार से उनकी

तुलना की जाती है। नौकरों-चाकरों का, हम वच्चों का कोई लिहाज नहीं वरता जाता। उनकी सूनी कोख पर भी एकाघ उसांस भरा वाक्य कहा ही जाता, जैसे—‘भगवान का दिया इसके भी एकाघ हो जाता, तो गृहस्थी में मन भी लगता। अब तो क्या है, जैसे होटल वैसे घर।’

दस-वीस लड़कियों को देखने-सुनने के बाद एक रिश्ता सर्वानुमति से पास हो गया। लड़की वाले पूना से लड़की को लेकर आये थे। उन लोगों की भी इच्छा थी और बुआजी ने भी राय दी कि दिन अच्छा है, बड़का अगर राजी है, तो शगुन हो ही जाए तो अच्छा है।

उन्हें तो उन दिनों वीटो पाँवर थी। फौरन पापा-मम्मी बाजार दौड़े गये। एक बनारसी साड़ी, एक अंगूठी, मिठाई, नारियल, फल-फूल—सब कुछ लाया गया। सब चीजों को देख-परखकर बुआजी ने एक थाली में सजा दिया। पास-पड़ोस के दो-चार लोगों को जल्दी में कहलवाया गया। सारी तैयारी होने के बाद बुआजी ने मम्मी से कहा, ‘वहू, चार बजे के बाद फिर मुहरत अच्छा नहीं है। लोग-बाग आयेंगे, जब आते रहेंगे। तू लड़की की गोद भर दे झटपट।’

आज्ञाकारी वहू की तरह मम्मी ने थाल की तरफ हाथ बढ़ाया ही था कि कैसे कुछ याद करके बुआजी बोलीं, ‘वकुल ! पड़ोस से मथुराइन को टेर न ले जरा।’

‘क्यों?’

‘पहले-पहल खील भरी जा रही है। किसी लड़कौरी के हाथ से होती, तो ठीक था।’

जैसे बिजली का करंट छू जाए, मम्मी ने हाथ थाली से खींच लिया। हमी सभी सन्नाटे में आ गये थे।

एकाएक बड़े भैया गरजे, ‘बुआजी ! आज आपने कह दिया, सो ठीक है। भविष्य में कभी इस तरह की बात करेंगी, तो इस घर में आपका निभाव नहीं हो सकेगा।’

हम सब सन्न रह गये। महाप्रतापी बुआजी का अपमान ! और वह भी परम संत बड़े भैया के द्वारा।

बुआजी को संभलने का मौका दिये बिना ही वे बोले, ‘इतना

शास्त्र-पुराण पढ़ती है आप ! इतना तो आपको मालूम होना चाहिए कि हम लोगों के होते हुए मम्मी को इतनी बड़ी गली आप नहीं दे सकती ।' भैया ने 'मम्मी' कहा था । उन्हें पहली बार यह संबोधन करते हुए सुना था । काश ! मम्मी ने भी यह सब-कुछ सुना होता ! लेकिन वे तो पता नहीं, कब से कमरे के बाहर चली गयी थी ।

ड्राइंग रूम में लड़की वाले बैठे हुए थे और भीतर यह नाटक हो रहा था ।

बड़े भैया ने निर्णय के स्वर में कहा, 'मैं मम्मी को लेने जा रहा हूँ । अगर उन्हें मना सफा, तो ठीक है । नहीं तो इन लोगों को लौटा दोजिए । मुझे शादी-वादी नहीं करनी है ।' और दरवाजे तक जाते हुए फिर ठिठक गये । इस बार अपनी रोपभरी आँखें पापाजी की ओर उठाते हुए बोले, 'पूज्यनीय पापाजी ! मा को भृत्यु को तीन माल भी न हो पाये थे कि आप अपनी ही एक छात्रा से व्याह रचा बैठे थे । लेकिन उस दिन भी आपसे इतनी नफरत नहीं हुई थी, जितनी आज हुई है । बुआजी ने इतनी बड़ी बात कह दी और आप चुप खड़े सुनते रहे, जबकि आप अच्छी तरह जानते हैं कि उनकी कोई गलती नहीं है ।'

'कोई गलती नहीं है,' लेकिन फिर भी यह संतानहीन जीवन बिताने पर विवश होना पड़ा है मम्मी को । क्या शादी से पहले उन्हें यह बात पता थी ? या प्रेम के उच्चार में उस समय यह सब-कुछ बहुत महत्वपूर्ण नहीं लगा था ? चार बच्चों के बाद पापा का मन भर जाना तो स्वाभाविक था । पर क्या मम्मी के मन में कभी ममता का सैलाब नहीं उमड़ा होगा ? तब किस पर बरसाया होगा उन्होंने अपना धार-दुलार ! कभी तो तिरस्कार उपजा होगा उस पुरुष के प्रति, जिसने उन्हें नारीत्व के इस गौरव से वंचित रखा था । एकाध बच्चा सचमुच अगर होता, तो आज उनका जीवन मूल्यहीन नाव की तरह लड़खड़ाता नहीं लगता । उनके एकाकीपन को घाटनेवाला कोई होता, तो शायद हम लोग भी स्वस्थ मन से घर लौट सकते थे ।

सुबह उठकर यही सब मेरे मन में आ रहा था । दोनों भैया अपना सामान



वांघ चुके थे। मम्मी के आदेश को सिर-माथे रखकर दोनों भाभियां ले जाने योग्य सामान छांट रही थीं। बुआजी भी दो-चार चीजें अपने परम प्रिय भाई की 'याद' में लिये जा रही थीं।

'बकुल, तुम नहीं देख रहीं अपने लिए कुछ?' मम्मी ने कहा।

'अभी से क्या कहूंगी। अभी तो पंद्रह दिन पड़े हैं जाने को।' मैंने कहा।

'लेकिन तब सिर्फ...तलछट ही हाथ आयेगी।' उन्होंने मुसकराकर कहा। वे चुपचाप बैठी दोनों बहुओं की 'कुशलता' देख रही थीं। कितनी चीजें पैक की जा चुकी थीं। पतिदेवता के डर से जो चीजें साथ नहीं जा रही थीं, उन पर रिजर्वेशन स्लिप लगाकर रखा जा रहा था, ताकि अगली ट्रिप में आसानी हो।

मैंने हंसकर कहा, 'मम्मी !' इस स्पीड से अगर हम सब लोग घर को खरोचना शुरू कर देंगे, तो कुछ दिनों के बाद आपके पास यादगार के तौर पर सिर्फ दीवारें रह जायेंगी।'।

'मेरी चिंता मत कर रे ! मेरे पास इतनी यादें हैं कि ऐसी-ऐसी दो-दो ज़िन्दगियां बसर हो सकती हैं।'।

मैंने गौर से देखा, समझ ही मे नहीं आया कि यह कथ्य विगत स्नेह का सूचक है, या व्यथा का। और उत्तर में चुप ही रह जाना पड़ा। तभी पोस्टमैन ने आकर मुझे मुक्ति दिला दी। रजिस्टर्ड लेटर था मम्मी के नाम। पढ़कर ही वे कुछ ऐसी उदास हो गयीं कि मेरा तो मन घबरा उठा। पूछने का भी साहस न बन पड़ा।

वगीचे में बड़े भैया किसी ठेलेवाले से बात कर रहे थे। शायद शाम के लिए तय कर रहे थे। मैंने उन्हीं से जाकर बतलाया। वे मेरे साथ मम्मी के कमरे में आये। उसी तरह पत्र हाथ में लिये वे निस्वंद बैठी थीं।

'मम्मी ?'

उन्होंने चौंककर सिर उठाया।

'किसकी चिट्ठी है ?'

उन्होंने लिफाफा हाथ में थमा दिया। पापा के कॉलेज से आया था। मम्मी के लिए नियुक्ति-पत्र था। यह तो खुश होने की बात थी। उनके एकाकीपन की समस्या का हल इतनी जल्दी मिल जायेगा, ऐसा सोचा भी

न था। फिर मम्मी क्यों उदास हैं ? जायद पापा के ही कॉलेज में जाने की कल्पना उनके लिए अमंजब हो उठी हो।

‘मम्मी ! नौकरी आपके लिए ऐसी जरूरी भी नहीं है। आपका जी न चाहे, तो आप मना कर दीजिए। आप तो आराम से अपना थोसिस पूरा कीजिए, कब से रूका पड़ा है।’ मैंने कहा।

‘जी न चाहने की तो कोई बात ही नहीं है रे ! मेरी तो कब से यह अभिन्नाया रही थी, अपने ही कॉलेज में पढ़ाने की।’

‘फिर आप इतनी उदास क्यों हैं ?’ मैंने बच्चों की तरह मचल-कर कहा।

‘यही मोच रही थी कि इनती पुरानी इच्छा अब जाकर पूरी होनी थी। बुरा तो लगता ही है न।’ उन्होंने इनमें स्वाभाविक ढंग में बहा कि मुझे घुप हो जाना पड़ा।

‘मम्मी !’ बड़े भैया मंभीर स्वर में बोले, ‘मेरे खयाल में आपका अभी यहाँ रहना ठीक नहीं है। कॉलेज जाने की बात तो और भी नहीं जंचती मुझे। आप छूटो भर मेरे साथ रहें। जुलाई में ज्वाइन कर लें। तब तक कुछ...’

‘आऊगी, अजय, तुम्हारे यहाँ भी आऊगी, पर अभी नहीं। सहानुभूति से इन लोगों ने जो ऑफर दिया है, दुबारा जायद न दें।’

मम्मी का कहना ठीक ही था। बात पुरानी होने पर फिर उतनी बजनदार नहीं रहनी। ऐसा अवसर दोबारा मिले न मिले। पापा की जिद के कारण उनकी यह इच्छा अब तक पूरी नहीं हो पायी थी। पापा नौकरी के सख्त खिलाफ थे।

‘मम्मी ! आपकी कोई सहेलिया क्यों नहीं हैं ? आती-जाती रहतीं, तो मन बहला रहता।’ मैंने कहा।

‘जिस उम्र में सहेनिया बनायी जाती है, वह तो तेरे पापा के चरणों में गुजार दी। और बातों के लिए समय ही कहाँ रह गया था। शादी के बाद तो खैर...मवास ही नहीं उठता था।’

‘न हो, आप कोई कन्व ज्वाइन कर लें।’ बड़े भैया बोले।

‘कलब ! पागल हुए हो।’

‘मैं तो बड़ी चिंता में पड़ गया हूँ । ऐसा कोई घर भी तो नज़र नहीं आता मुझे, जहाँ आप लोगों के घनिष्ठ संबंध रहे हों । उन लोगों के भरोसे कम-से-कम मैं निश्चित तो हो सकता !’

‘इतने परेशान क्यों हो रहे हो अजय, मेरी समझ में नहीं आता । यह अकेलापन क्या आज का है । इसकी तो अब आदत-सी बन गयी है... तुम्हारे पिता के साथ रहकर और सीखा ही क्या है । बचपन में तुम लोगों ने उस जादूगर की कहानी तो सुनी होगी, जो एक राजकुमारी को वश में कर लेता है । दिन भर तो बेचारी पत्थर की मूर्त बनी रहती है और रात में...’ और सहसा जैसे उन्हें याद आ गया कि वे क्या कह गयी हैं । दोनों हाथों से अपना चेहरा ढंक लिया उन्होंने ।

मैं और बड़े भैया पत्थर की मूर्ति बने उन्हें देखते रह गये थे ।

निष्कासन

‘मैं तो बड़ी चिंता में पड़ गया हूँ। ऐसा कोई घर भी तो नज़र नहीं आता मुझे, जहाँ आप लोगों के घनिष्ठ संबंध रहे हों। उन लोगों के भरोसे कम-से-कम मैं निश्चित तो हो सकता !’

‘इतने परेशान क्यों हो रहे हो अजय, मेरी समझ में नहीं आता। यह अकेलापन क्या आज का है। इसकी तो अब आदत-सी बन गयी है... तुम्हारे पिता के साथ रहकर और सीखा ही क्या है। बचपन में तुम लोगों ने उस जादूगर की कहानी तो सुनी होगी, जो एक राजकुमारी को वश में कर लेता है। दिन भर तो बेचारी पत्थर की मूर्त बनी रहती है और रात में...’ और सहसा जैसे उन्हें याद आ गया कि वे क्या कह गयी हैं। दोनों हाथों से अपना चेहरा ढंक लिया उन्होंने।

मैं और बड़े भैया पत्थर की मूर्ति बने उन्हें देखते रह गये थे।





सारी रात गरीब पर जैसे छिरकलियां रेंगती रहों। चार वजे के बाद तो विस्तर पर नेटना मेरे लिए अमभव हो गया। साँवर के नीचे बैठकर देर तक नहाती रही, तब जाकर जी हल्का हुआ।

बाथरूम से लौटकर देखा, डॉ. कोहली अब भी गहरी नींद में सोये हुए थे। नींद में उनका चेहरा वज्रों का-मा लग रहा था—तृप्ति, शांत, निर्लिप्त। उनके हल्के खरटि दक्षिण महासागर के स्वर में धूल-मिल गये थे। दक्षिण महासागर, जो इस ब्राह्ममूर्त में ऊया का आवाहन कर रहा था। मंद्र मस्तक में आरोह-अवरोह घरती हुई उन नहरों का गभीर नाद मुझे बाहर आने का निमंत्रण दे रहा था। कमरे की चारदीवारी मुझे जहर-भी लग रही थी। मैंने अपने गीले बालों का एक ढीला-मा जूटा बनाया और बाहर निकल आयी। काउंटर पर बैठे क्लर्क ने मुझे 'गुडमॉर्निंग' किया। गेट पर ऊपले-से दरवान ने मुझे सलाम भी किया। पर किमी की भी आखों में मुझे आश्चर्य या कौतूहल नहीं दिखाई दिया। सागर के सम्मोहन से शायद वे लोग मुझसे ज्यादा परिचित थे।

सभी पौ नहीं फटी थी, पर गीली रेत में भीड़ धीरे-धीरे इकट्ठा हो रही थी। सबकी आँखें दक्षिण के प्रसिद्ध सूर्योदय को देखने के लिए ललक रही थीं। उस भीड़ में यद्यपि कहीं कोई परिचित चेहरा नहीं था, फिर भी उस क्षण वे मारे योग बड़े अपने-से लग रहे थे।

भीड़ से छिटककर मैं एक कोने में बैठ गयी। जल की सिद्धरी भामा



को अपने में भरती हुई मेरी आंखें विवेकानंद शिला-स्मारक से जा टकरायीं, जो धीरे-धीरे आकार ले रहा था। जैसे-जैसे दिशाएं उजली होती जा रही थीं, उसका एक-एक अंग उद्भासित हो रहा था। पहले शिखर, फिर गर्भगृह, फिर सीढ़ियां। लग रहा था जैसे किसी शिल्पी ने तम का पहाड़ चीरकर एक मंदिर ऊपर से नीचे की ओर तराशना प्रारंभ किया हो। बहुत दिनों पहले, गरोठ के पास धर्मराजेश्वर का मंदिर देखा था। उसी की याद हो आयी।

खिलखिलाहट की ध्वनि सुनकर मैंने चौंककर सिर उठाया। कल वाली स्कूल-पार्टी पूरे तट पर फैल गयी थी। कल यही सब शिला-स्मारक पर भी मिली थी। सारा वक्त मेरी आंखें उन्हीं का पीछा करती रहीं। उनका चहकना, खिलखिलाना, गोल-गोल आंखें घुमाकर बातें करना, एक-दूसरे के कंधों पर झूलकर चलना, टीचर को देखकर जीभ काट लेना—सब कुछ कितना प्यारा लग रहा था। जब तक वे लोग बोट पर बैठकर रवाना न हो गयीं, मैं अपलक उन्हें देखती रही। होश में आने पर देखा, डॉ. कोहली एक गवाक्ष के सहारे चुपचाप खड़े समुद्र को निहार रहे हैं।

‘मुझे अफसोस है...’ मैंने उनके पास जाते हुए संकोच में डूबे हुए स्वर में कहा।

‘नहीं, अफसोस की क्या बात...’ उन्होंने भरपूर कंठ से कहा और आगे चल दिये। जैसे अब तक मेरी ही प्रतीक्षा में खड़े हों। मैं घिसटती-सी उनके पीछे चल दी। मन में एक अपराध-बोध व्याप गया—मेरी वजह से आज की सारी शाम बेसुरी हो गयी है। तरह-तरह से मैंने उस तनाव को तोड़ने का प्रयास किया। स्मारक के दर्शन के बाद जब हम लोग बोट से इस किनारे तक आये, तब तक वे काफी नार्मल हो चुके थे।

‘सुनिए।’ उन्हें सहज जानकर मैंने सफ़ाई देते हुए कहा, ‘इन लड़कियों को देखकर मुझे गुड़िया की याद हो आयी थी। मैं जानती हूँ कि यह ठीक नहीं, पर मैं क्या करूँ...!’

‘इसमें गलत तो कुछ नहीं।’ उन्होंने जैसे मुझे आश्वस्त करते हुए कहा, ‘लेकिन एक बात मेरी समझ में नहीं आती।’

मैं बुद्ध की तरह उन्हें देखती रही।

‘तुम्हें हर बार स्कूली लड़कियों को देखकर ही गुड़िया की याद क्यों आती है ? इन पंद्रह दिनों में मैंने यह बात कई बार मार्क की है। फ़ॉक या स्कर्ट-ब्लाउजवाली किमी लड़की को देखते ही तुम्हारी आँखें पीड़ा से भर उठती हैं। क्या तुम्हारी कल्पना में वह अब भी छोटी-सी बच्ची ही है ? मैंने भी उसे देखा है। वह एक सुंदर युवती है—मनोहर और मांसल। तुम पता नहीं क्यों उसे अब तक नन्ही-मुन्नी गुड़िया ही समझती रही हो। शायद मा की नज़रों में बच्चा कभी बड़ा होता ही नहीं। ठीक है न।’

‘शायद यही बात हो।’ उनके लंबे-चौड़े बकनब्र का मैंने सक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया। अब उन्हें कैसे समझाती कि साड़ी में लिपटी हुई सजी-धजी यह लड़की तो बिन्नी (उमकी बुआ) की विधु है। मेरी गुड़िया तो इन्हीं लड़कियों जैसी है, हिरनी की तरह कुलाचे भरने वाली, चिड़िया की तरह चहकने वाली, झरने की तरह विलखिलाने वाली—मेरे मन-प्राणों में तो उसका वही रूप है।

कह भी देती, तो क्या वे समझ पाते। पुरुष हैं, फिर इतने वर्ष पश्चिम में बिताकर आये हैं। पश्चिम, जहाँ लोग सिर्फ़ वर्तमान को जीते हैं, उन्हे पूरी इच्छाशक्ति के साथ भोगते हैं। तभी तो इतना खुलकर हँस पाते हैं। कौन कह सकेगा कि डॉ. कोहली अमरीका में अपनी पत्नी और दो बेटे छोड़कर आये हैं। जो बीत गया, उसके लिए कोई क्लमक नहीं, भलाल नहीं। अतीत के लिए विमूरना तो हमारे हिस्से में आया है।

बड़ी मुश्किल से अपने को ममेटकर मैं पूरे मन से एन्जॉय करने का निश्चय कर चुकी थी पर कन्याकुमारी की प्रतिमा के सामने जाकर फिर द्विखर गयी। मन सुदूर अतीत में दौड़ गया, जहाँ स्कूल के बापिकोरमब में ‘मदन-भस्म’ मंगीतिका में अभिनय करने के लिए वह पार्वती के रूप में सज-धजकर तैयार बँठी थी।

‘मैं कैसे लग रही हूँ, मम्मी ?’ मुझे धीन-रूम में देखते ही उमने पूछा था। तब दोनों हाथों में उसका माया पकड़कर मैंने उसे चूम लिया था। उस समय उसकी आँखें ऐसे ही हँस रही थी, ऐसे ही।

‘वाह, क्या आँखें हैं, क्या सौंदर्य है !’ डॉ. कोहली अभिभूत होकर

कह रहे थे। उनकी नज़रें बचाकर मैंने अपनी आंखें पोंछ ली थीं।

पर उनकी तीक्ष्ण दृष्टि से शायद यह सब कुछ नहीं छूट सका था। क्योंकि रात विस्तर पर आते ही उन्होंने अपने मृदु स्वर में पूछा था, 'माया ! बतल सकती हो, मनुष्य शादी क्यों करता है ?'

'यह क्यों पूछ रहे हैं आप ?' मैंने उत्तर में एक प्रश्न ही जड़ दिया।

'इसलिए कि मैं बतलाना चाहता हूं कि शादी का मकसद सिर्फ शारीरिक तुष्टि नहीं, उसका इंतजाम तो चांदी के कुछ टुकड़ों में कहीं भी हो सकता है। इंसान जब शादी करता है, तो जरूर ही इससे कुछ ज्यादा चाहता है।'

'तो क्या...तो क्या आपको वह नहीं मिल रहा ?' मैंने कांपते स्वर में पूछा।

'नहीं !' उन्होंने दो-टूक जवाब दिया, 'उल्टे मुझे रोज ऐसा लगता रहा है, जैसे मैंने तुम्हारे साथ बलात्कार किया हो। कोई भी शरीफ आदमी इस भावना के साथ खुश नहीं रह सकता। क्या यह शादी तुम पर थोपी गयी है ?'

मैंने नकारात्मक ढंग से सिर हिला दिया, पर उनकी आंखों में अविश्वास बराबर झलकता रहा।

'दरअसल बात यह है कि...पिछला सब कुछ एकदम भूलना मेरे लिए मुश्किल है।' मैंने कहने का प्रयास किया। पर मेरी बात काटते हुए उन्होंने कहा, 'भूलने के लिए कौन कहता है ? कम-से-कम हम हिस्सा तो बंटा ही सकते हैं।'।

सच तो था। उन्होंने भी तो मुझे अपने प्रेम की, असफल विवाह की दास्तान सुनायी थी। यह भी बतलाया था कि वहां की आपाधापी से ऊबकर वे अब एकदम शांत जीवन बिताना चाहते हैं। इसीलिए उन्होंने महाराष्ट्र के एक सुदूर ग्राम में अपनी डिस्पेंसरी खोल रखी है।

नरेन्द्र की असमय मृत्यु के दाग को छोड़ दिया जाए, तो मेरे वैवाहिक जीवन की स्मृतियां माधुर्य से ओतप्रोत थीं, जिन्हें अपने एकाकी जीवन में भी मैंने अपनी कल्पना में ही कई-कई बार जिया है। इसीलिए मेरा मनोबल कभी टूट नहीं सका। लेकिन अब वे सारी बातें कितनी दूर की

लगती हैं। पिछले दो-तीन वर्षों में मन पर एक ही नाम रह गया है। एक ही कामक, एक ही पीड़ा रह गयी है और वह है गुड़िया, मेरी विधु, मेरी विटिया। कभी कहने पर भी आऊँ, तो क्या सिलसिलेवार वह सब कह पाऊँगी मैं !

बड़े फूहड़ ढंग से रात उन्हें अपने सर्वात्म समर्पण का विश्राम दिनाती रही। उन्हें शायद नंतोष हो भी गया हो, पर मुझे अपने से ही नंतोष नहीं था। सब तो यह था कि मैंकड़ों योजन की मानसिक दूरी के साथ जब दो शरीर मिलते हैं, तो उम मिलन में कोई मांगल्य, कोई सौंदर्य, कोई अर्थ नहीं रह जाता।

गोचनी हूँ, जिम तरह उसने मुझे उपेक्षित करके अपने लिए एक नया संसार छड़ा कर लिया है, मैं क्यों नहीं कर सकती ? लेकिन दोनों की स्थितियों में अंतर भी तो है। मैं मा हूँ, वह बेटी है। उसे तो नदी के जल की तरह हमेशा आगे ही बौड़ना है। मुझे तो किनारों की तरह मित्रों अपनी बांहें फैलाये रखना है।

सभी की लडकिया एक दिन परायी हो जाती हैं। इसीलिए तो विधु के जन्म पर मैं फूट-फूटकर रोयी थी। दो बच्चों को मृत अवस्था में जन्म देने के बाद यह सीजेरियन का अंतिम चॉस था। तब अम्मा ने समझाया था, 'पगली, रोती क्यों है ? जैसी ममता बिटिया करती है, ऐसी लडके छोड़े ही करेंगे। लडकी कही भी रहेगी, तो तेरे लिए आठ-आठ आंमू रोयेगी। लडके तो घर में रहेंगे, तब भी आख उठाकर न देखेंगे।'

शायद अम्मा अपने अनुभव के बोल सुना रही थी। इसका प्रमाण मुझे मिला जब नरेन्द्र अचानक हमारे बीच से उठ गये थे। बीमारी में बड़े धैर्य से उनकी सुश्रूषा करनेवाली मैं एकदम टूट गयी थी। तब इस नौ वर्ष की छोकरी ने मुझे मा की तरह सहारा दिया था। पिता की मृत्यु का दुःख किमी दार्शनिक की तरह पीकर वह मेरी देखभाल करती रही। शोक-प्रदर्शन करने के लिए आनेवाली भीड़ से, रास्ते पर लोगों की करुण दृष्टि से, नाते-रिश्तेदारों के व्यंग्य-बाणों से—बड़े कौशल से मुझे इन सबके बचाती हुई वह उधार लायी थी। उसकी मजबूत बांहों का सहारा पाकर

मैंने पतवार फिर थाम ली थी और जिन्दगी बड़े आराम से पार हो रही थी ।

फिर तेईस मार्च का वह अशुभ दिन आया । हां, ठीक तेईस मार्च ही थी वह । इतने दिनों बाद भी वह तारीख ऐसे याद है, जैसे कल ही की बात हो । गुड़िया की परीक्षा चल रही थी—हायर सेकंडरी बोर्ड की ।

रोज की तरह दफ्तर से लौटते हुए मैंने पेस्ट्री, संतरे, मक्खन की टिकिया खरीदीं । एक 'माधुरी' का अंक और एक-दो पॉकेट बुक्स भी बैग में छिपाकर रख लीं । कल आखिरी पेपर थे । परीक्षा खत्म होते ही उसे कुछ-न-कुछ पढ़ने को चाहिए ।

घर एकदम सुनसान था । आठों पहर चीखने वाला रेडियो भी चुप था और उसकी हर धुन पर थिरकनेवाली गुड़िया का कहीं पता नहीं था । सारी चीजें रसोई की अलमारी में रखकर मैंने चाय का पानी चढ़ाया और उसे आवाज़ दी ।

पर कोई उत्तर नहीं आया । चाय छानने के बाद मैं खुद ही दोनों कप लेकर चारों कमरों में घूम आयी । मेम साहब सुस्त होकर आरामकुर्सी पर पड़ी हुई थीं । बड़ी ममता हो आयी । दिनभर पढ़ती रही होगी बेचारी ।

'मेम सा'ब, चाय हाज़िर है ।' मैंने एक स्टूल खींचते हुए कहा । उसने आंखें खोलकर देखा, चुपचाप एक कप लेकर सुड़कना शुरू कर दिया । मम्मी को देख रोज की तरह मुसकरायी भी नहीं—न नाश्ते की फरमाइश, न देर से आने की शिकायत । मुझे बड़ा अजीब-सा लगा ।

'पेपर कैसा हुआ, बेटे ?' मैंने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा ।

'अच्छा ही हुआ ।' उसने मरी हुई आवाज़ में कहा । लेकिन मैं समझ गयी कि अच्छा नहीं हुआ है, नहीं तो वह इतनी उदास क्यों होती । थोड़ा दुःख भी हुआ, पर मैंने जाहिर नहीं होने दिया ।

'लता के घर तक घूम आना हो, तो हो आ । मैं अभी खाना तैयार करती हूँ ।'

लेकिन उसने कोई उत्साह नहीं दिखाया । मैंने जल्दी-जल्दी सब्जी छाँकी, परांठे सेंके, थोड़ी-सी वूदी उतारकर उनका रायता बनाया और

उसे आवाज दी।

मेज पर खाना लगाते हुए देखा, सुबह की प्लेटें पड़ी भिनभिना रही हैं। डाटने की इच्छा हुई, पर सोचा कि जाने दो। परीक्षा के दिन है। भूल गयी होगी। खुद मेज साफ करके खाना लगाया।

‘खाने के लिए साथ में सुबह कौन था—लता या आरती?’ खाना खाते हुए मैंने पूछा।

कुछ क्षण वह खाली में संगलिया चलाती रही। फिर बोली, ‘गंगाधर चाचा थे।’

‘अच्छा! किसी काम से आया था?’

‘नहीं! रास्ते में मिल गये थे। मोटर साइकिल पर घर तक छोड़ गये।’

‘खाना तो तुम्हारे ही लायक था, कम तो नहीं पडा? अलमारी में ब्रेड भी रखी थी, निकाल लेती न। अच्छा, छाया नहीं आयी अभी? तीन महीने हो गये। मा के यहा ही जाकर बैठी हुई है। गंगाधर का क्या हुआ? फिर से बहाल होने के आँडसँ आनेवाले थे इस महीने? उसके केस का फँसला हुआ या नहीं?’

प्रश्नों की झड़ी के बीच ख्यान आया कि गुड़िया धुपचाप बैठी है। मेरी एक बात का भी जवाब उसने नहीं दिया। ठीक भी था। इतनी-सी लड़की इन बातों को क्या समझती।

खाना खाते ही वह विस्तर पर जा सेटी, मैंने पढ़ने के लिए इस्तरा नहीं किया। सोचा, ठीक से सो लेगी, तो तरोताजा हो जायेगी। वैसे एक रात से फर्क भी क्या पड़ता था।

‘बेटे, अपना गणित का पेपर चाचाजी को दिखा दिया था? एक प्रश्न पर सदेह हो रहा था न तुम्हें!’ मैंने बत्ती बुझाते हुए पूछा। उसने जवाब नहीं दिया। शायद आज के पेपर से उसका मूड ऑफ हो गया था।

‘कोई बात नहीं। फिर कभी आयेंगे, तो दिखा देना।’ मैंने तसल्ली देते हुए कहा।

‘फिर कभी आयेंगे, तो धक्के मारकर निकास दूगी घर से!’

क्या यह गुड़िया की ही आवाज थी! मैंने दुबारा बत्ती जलायी। व अपने विस्तर में बैठी गुस्से से तमतमा रही थी।

‘ऐसा नहीं कहते, वेटे !’

‘उस आदमी को तुमने घर में भी घुसने दिया, तो मुंह नहीं देखूंगी ।’

उसने दांत पीसते हुए कहा ।

‘लेकिन ऐसा हुआ क्या है ?’

‘क्या हुआ है, देखोगी ?’ कहते हुए उसने तड़ातड़ अपने ब्लाउज के बटन खोल डाले । उफ़ ! कोई इतना वहशी हो सकता है, मैंने सहमकर अपनी आंखें बंद कर लीं । उजले बल्ब की रोशनी में उसका अनावृत शरीर दीपशिखा-सा दमक रहा था और गंगाधर की हैवानियत के चिह्न उसे धुएं की लकीर की तरह घेरे हुए थे ।

मैंने दुवारा आंखें खोलीं, तब तक वह व्यवस्थित होकर विस्तर पर जा सोयी थी । पर उतनी-सी देर में जान लिया कि गुड़िया अब बच्ची नहीं रही, बड़ी हो गयी है । मां की बात याद आयी । पिछली बार वे आयी थीं, तो बार-बार कहती रही थीं—‘लड़की तो बाप की तरह लंबोतरी हुई जा रही है । इसे साड़ी या सलवार पहनाया कर । ये उघड़ी-उघड़ी टांगें अच्छी नहीं लगतीं ।’

मुझे इतना गुस्सा आता । खीजकर कहती—‘तुम भी गजब करती हो, अम्मा । हम लोगों को तेरह साल की उम्र से साड़ी में बांध दिया था । इस बेचारी को यह सजा क्यों देती हो ! पता है आज तो कॉलेज में भी कोई साड़ी पहनकर नहीं जाता ।’

अम्मा तुनककर कहतीं, ‘आजकल के क्या कहने ! इनका बस चले, तो फिराक पहने ही भावरें पड़वा लें ।’

घर में गंगाधर, डॉक्टर साहब या अन्य कोई परिचित आते, तो वे भुनभुनाती रहतीं, ‘लड़की को समझाया कर, जरा इनसे दूर ही रहा करे । ये चौबीस घंटे चोटी खींचना, गाल मसलना, पीठ पर धील जमाना मुझे अच्छा नहीं लगता ।’

‘गजब करती हो, अम्मा, तुम । ये सब उसके चाचा लोग हैं । पता है, इसे कितना लाड़ करते हैं ?’

‘तो लाड़ क्या दूर से नहीं हो सकता ?’

अम्मा की इस बात को मैंने हमेशा हंसी में उड़ाया । ऐसी ऊटपटांग

वातों से लड़की का दिमाग खराब करने की इच्छा कभी नहीं हुई।

क्या यह मैंने ठीक किया था ?

उसे अपनी गोद में भरने हुए मैंने कांपती आवाज में कहा, 'डॉक्टर आंटी को आवाज क्यों नहीं दे ली, बेटे ?'

'ओह मम्मी, मुझे क्या मालूम था ? वह विलेनो का-सा व्यवहार करने लगे। बैठे ही बैठे एकदम बदतमीजी पर उतर आये।'।

फिर मुझसे अलग होते हुए बोली, 'मैंने भी वह सबक सिखाया है कि जिन्दगी भर याद रखेंगे। मैं कोई मिट्टी का लौंदा नहीं हूँ कि जो चाहे मुझे रौंदकर चला जाए।'।

उसका वह आवेग, वह रोप, वह रूप मेरे लिए एकदम नया था। अनुभव के क्षण उसे एकदम बड़ा कर गये थे। और अनुभव भी कितना भयानक ! बेचारी अब कभी जान नहीं पायेगी कि पुरुष का पहना स्पर्श कितना मंगल, कितना पवित्र, कितना रोमांचक होता है। इस दुर्दिन की स्मृति हमेशा एक काली छाया की तरह उसके अनुभवों के आसपास मंडराती रहेगी।

हाय गंगाधर ! तुमने यह क्या किया ? इसके लिए मैं जिन्दगी भर तुम्हें माफ नहीं कर पाऊँगी।

कल तक गंगाधर मेरे स्नेह का, सहानुभूति का पात्र था। बेचारा आठ-दस महीने से मुअत्तिल होकर घर पर बंठा हुआ था। गामन से तिरस्कृत होते ही सबधियों की उपेक्षा का दुःख भी उसे सहना पड़ रहा था। आर्थिक सकट भी मुह बाये खड़ा था। इन सबमे घबराकर छाया भी बच्चों को लेकर मां के पास चली गयी थी। सारी मुसीबतों के बीच वह एकदम अकेला पड़ गया था। पत्नी के तानों से छन्ननी बने कलेजे को लेकर विभागीय जाच से जूझ रहा था।

महीनों से किसी स्नेहिल स्पर्श का व्यापार उसका मन फगूनापी एकांत दोपहरी में विधु का आकर्षण नहीं झेल पाया होगा ! अगर विधु की जगह और कोई होता, तो मेरी सारी सहानुभूति गंगाधर के साथ होती। पर उस समय तो मेरा कण-कण उसे काँस रहा था। लग रहा था कब सुबह हो और...



लेकिन सुबह होने पर ही मैं क्या कर लेती ? क्या उसके दरवाजे जा-  
कर इस विश्वासघात के लिए जवाबतलब करती ? सर्वनाश जो होते-होते  
रह गया था, मेरी बातों से शायद पूरा ही हो जाता ।

तब बहुत याद आये नरेन्द्र । पुरुष के छत्र के बिना कितना पंगु हो जाता  
है नारी का जीवन ! रात के अंधेरे में हम मां-बेटी देर तक एक-दूसरे से  
लिपटी उनकी याद में आंसू बहाती रहीं ।

सुबह जब उठी थी, तो एक निश्चय के साथ ही । सारी बात एकदम  
भूल जाना ही श्रेयस्कर था, जिसमें आज गुड़िया का आखिरी पेपर था । मैंने  
रोज़ की तरह चाय बनायी, नाश्ता बनाया, उसके लिए पानी गरम किया  
और रोज़ की तरह सहज भाव से ही उसे जगाया । रोज़ विस्तर से उठते  
ही उसकी जवान शुरु हो जाती थी । उस दिन उसका चार्ज मैंने ले लिया  
था । मैं एक क्षण का भी अंतराल नहीं छोड़ना चाह रही थी, जिससे वह  
कल के बारे में सोचने लगे ।

उसे नहाने भेजकर मैं कलम में स्याही भरने चली थी कि घंटी बजी ।  
'इतनी सुबह कौन होगा'— सोचते हुए मैंने दरवाजा खोला । नाइट गाउन  
पहने पड़ोसी डॉक्टर मित्रा खड़े थे ।

'आपका फोन है, भाभी !'

'मेरा ?' मैंने आश्चर्य से भरकर पूछा और उनके पीछे चल पड़ी ।  
'भाभी, मैं दवे बोल रहा हूं, तिलकनगर से ।' रिसीवर उठाते ही आवाज़  
आयी ।

'कहिए !' मैंने उत्तर दिया । और उसके वाद जो कुछ सुना, वह इतना  
भयानक था कि मेरे हाथ से रिसीवर ही छूट पड़ा ।

'क्या बात है, भाभी ?' डॉक्टर दंपति ने घबराकर पूछा ।

'गंगाधर ने सीलिंग फैन से लटककर आत्महत्या कर ली है ।' मैंने  
सपाट स्वर में कहा ।

'क्या ?' वे दोनों भी स्तब्ध रह गये थे ।

'कल ही तो गुड़िया को छोड़ने यहां तक आये थे ।' मिसेज़ मित्रा ने  
कहा । मैंने घबराकर उनकी ओर देखा ; ईश्वर न करे, आगे का हाल भी वे  
जानती हों !

‘सरपेंड हो गये थे न ! मैंने सुना कि धीवी भी लड़-झगड़कर चली गयी थी ।’ डॉक्टर साहब बोले ।

‘यही तो गलत होता है । ऐसे समय पति को अकेला नहीं छोड़ना चाहिए । पता नहीं कब कैसा मन हो जाए?’

मैंने मिसेज मित्रा को बात पूरी नहीं करने दी । हड़बड़ाकर उठने हुए बोली, ‘मुनिए, मुझे शायद दिन भर वहाँ लग जायेगा । आप गुडिया को यहीं रख लीजिएगा । और...और उसमें अभी कुछ नहीं बतलाइएगा ।’

‘आप बेफिक्र रहिए ।’ उन लोगों ने आश्वासन दिया ।

‘कहा चली गयी थी, मम्मी ?’ विष्णु ने पूछा ।

‘पड़ोस में कहने गयी थी । आज तुम खाना वही खाओगी । मुझे जरा जल्दी दफ्तर जाना है । बसा नहीं पाऊंगी ।’

मुझे लगा, वह सौ प्रश्न पूछ डालेगी, पर वैसा कुछ नहीं हुआ । चुपचाप नाश्ता करके सीढ़िया उतर गयी । रोज की तरह न भगवान को हाथ जोड़े, न मेरे पाव छुए, न सड़क से टा-टा किया ।

उसका वह बदना हुआ रूप देखकर मन भर आया । दुःख करने के लिए भी समय कहा था । वहाँ गंगाघर के बगले पर मेरी प्रतीक्षा हो रही थी । कहने को रिश्ता हम लोगों में कुछ भी नहीं था । बरेली में उन लोगों का मकान हमारे घर के मकान से लगा हुआ था, बस । परदेश में आकर यही रिश्ता पक्का हो गया था । नरेन्द्र को वे हमेशा बड़े भाई की तरह मानते रहे थे और उनके वाद भी परिवार को गंगाघर का स्नेह-सहयोग मिलता रहा था । इसीलिए सबसे पहले मुझे ही याद किया गया था ।

यह कल्पना कितनी अजीब लग रही थी कि त्रिस ममय मैं अपने संपूर्ण अंतर्मन से उसे शाप पर शाप दिये जा रही थी, उसका मृत शरीर छत के पंखे से झूल रहा था । मूर्खता होने का अपमान उसने दिलेरी से सहन कर लिया था, रिश्तेदारों की उपेक्षा की उसने परवाह नहीं की थी, पत्नी की अवहेलना भी वह पी गया था, पर आत्मग्लानि की यंत्रणा उससे झेली नहीं गयी थी । मृत्यु का निश्चित समय दबे बता नहीं पाया था । दूध वाले ने दरवाजा खटखटाने के बाद बेडरूम की खिड़की से झाँका था, तभी इस दुर्घटना का पता लग सका था ।

लेकिन मुझे निश्चय था कि गंगाधर यहां से लौटकर ही मृत्यु से लिपट गया होगा। जैसा उसे अब तक जाना था, उससे यही लगता था। मेरे मन का सारा आक्रोश करुणा में बदलकर रह गया था।

मेरे वहां पहुंचने तक लाश पोस्टमार्टम के लिए जा चुकी थी। मेज़ पर उसकी लिखी चिट्ठी भी पुलिस ले गयी थी। दवे ने बतलाया कि उसमें बस इतना लिखा था, 'जीवन से ऊब गया हूं। सब लोग कहा-सुना माफ करें।'।

मन का रहा-सहा रोष भी चिट्ठी की बात सुनकर निकल गया और मेरी आंखों से आंसू बह निकले।

दिनभर कैसे बीता, शब्दों में कहना कठिन है। एक तो मौत का घर, फिर ऐसी भयानक मौत। ढेर सारे लोग इकट्ठा हो गये थे। वे लोग भी थे, जो उससे इन दिनों कतराये थे। वे अफसर भी थे, जो उससे गांव का घी मंगवाते थे, अपनी बेटियों की शादियों में सरकारी पेट्रोल फुंकवाते थे, हर छह महीने बाद अपना नज़राना वसूलते थे। उसके मुअत्तिल होने पर इन सब लोगों ने आंखें फेर ली थीं। और अब अर्थी को कंधा देने के लिए तत्परता से हाज़िर हो गये थे।

वे रिश्तेदार भी थे, जो उसकी सरकारी जीप में बैठकर यहां-वहां जाने में बड़ा गर्व अनुभव करते थे। उसी जीप के छिन जाने के बाद, जो उसकी नमस्ते का जवाब भी ऐसे देते थे, जैसे अहसान कर रहे हों।

वे दोस्त भी थे, जो हर तीसरे दिन उसके यहां डिनर पर आते रहते थे। पर पिछले छह महीनों से किसी ने उसे चाय पर भी नहीं बुलाया था।

उन लोगों की आंखें और आंसू देख-देखकर चिढ़-सी हो रही थी। पर छाया की प्रतीक्षा में मेरा वहां बैठना आवश्यक था। तीसरे पहर छाया और गंगाधर की लाश साथ ही पहुंचे। सब-कुछ निबटाते रात के नौ बज गये। छाया की भाभियां तो मुझे रोकना चाह रही थीं, पर विधु का बहाना कर मैं वहां से निकल आयी।

घर पर पहुंचकर भी ऐसा लगता रहा, जैसे वे सारे दृश्य, सारी आवाज़ें मेरा पीछा करती रही हैं। नहाकर निकली, तो देखा, मिसेज़ मित्रा खड़ी हैं।

'भाभी, खाना खाने चलिए। हम लोग रुके हुए हैं।' खाने की जरा

इच्छा न थी, पर उनके मौज्ज्य को ठुकराते नहीं बना। मारी वानें दोहराने की जरा इच्छा न थी। पर उन लोगों की उत्पुक आंखों का लिहाज करना पड़ा। जैसे भी बन पड़ा, उन्हें सब बतानी रही। बार-बार डर लगा रहा कि गुड़िया तक ये सारी बातें न पहुंचें। एक-दो बार दबी जवान से इशारा भी किया। तो मिसेज मित्रा बोली, 'वह सब सुन चुकी है। उसके बतास की एक लड़की तिलकनगर ही में रहती है। उसने मुबह ही यह मबर उसे दे दी है। ऐसी बातें छिपती थोड़े ही हैं।'

शायद उनका कहना ठीक ही था। पर मैं अपनी तरफ से कोशिश करती रही थी कि यह समाचार उस तक मौम्य रूप में पहुंचे। गंगाधर की वह बीमरस मृत्यु मुझे भी हिना गयी थी। वह तो छँर, बच्ची ही थी।

'मम्मी !' घर में आते ही उसने करण स्वर में पुकारा।

मुझे मालूम था, वह क्या पूछना चाहती है। बड़े ही सयत स्वर में मैंने कहा, 'देखो बेटे ! अभी मुझसे कुछ मत पूछो। दिन भर से यही राय कह-मुनकर मैं पागल हुई जा रही हूँ। थोड़ा सो लेने दो मुझे।'

कहने को बिस्तर पर आ लेटी मैं, पर आखों में नींद नाम को नहीं थी। शायद बिधु भी जाग रही थी, पर मैं जान-बूझकर मूर्तिवत् लेटी रही। एकाएक मार्च की वह रात गरम हो उठी और मैं पमीने से नहा गयी। धीरे-से उठकर मैंने पंखा चला दिया।

'बंद करो वह पंखा, मम्मी प्लीज !' वह इतने आर्त स्वर में चींथी कि मैं भीतर तक सिहर उठी। पंखा बंद कर मैंने खिड़किया पूरी-पूरी खोल दीं। पर्दे ऊपर डाल दिये गये और अखबार के कागज से हवा करती हुई उसे धपकने लगी।

'मम्मी !' कुछ देर बाद उसका स्वर आया, 'चाचा ने क्या किया होगा ऐसा ?'

'तुझे मालूम तो है, वह मुअत्तिल हो गये थे।'

'मुअत्तिल क्या आज हुए थे ?'

'तेरी चाची लड़-झगडकर चली गयी थीं न ! इसी से उदास हो गये थे।'

'चाची को गये तीन महीने हो गये हैं।'

‘शायद कर्जदारों ने परेशान किया हो। अब सो जाओ, बेटा। बहुत रात हो गयी है।’ मैंने पीछा छोड़ाते हुए कहा।

वह मेरे हाथों से छिटककर उठ बैठी, ‘क्यों अपने को झुठला रही हो, मम्मी? मुझे मालूम है, चाचा ने मेरी वजह से आत्महत्या की है। मैंने उन्हें बहुत बुरा-भला कहा था, उन्हें पापा की खड़ाऊं से पीटा था, इतनी-इतनी गालियां दी थीं मैंने—मुझे बहुत गुस्सा आया था, पर मैंने यह कभी नहीं चाहा था कि वे इस तरह...’ और वह फफककर रो उठी। अपनी वजह से एक हंसता-खेलता आदमी दुनिया से उठ गया है, यह कल्पना उसका नन्हा-सा दिल मथ गयी थी। उसकी रुलाई का ज्वार इतना प्रबल था कि मेरे सांत्वना के शब्द वह-वह जाते थे।

मुझे खुद पता नहीं था कि वह कब सोयी, क्योंकि शारीरिक और मानसिक रूप से क्लान्त होकर मैं तो नींद को ज्यादा देर रोक नहीं पायी थी।

सुबह नींद खुली भी, तो उसकी चीख सुनकर ही। अलसायी आंखों से मैंने उसके विस्तर की ओर देखा। वह सूना पड़ा था। खुली खिड़कियों से होकर धूप सारे कमरे में बिछ गयी थी। मैं हड़बड़ाकर उठी। देखा, वरामदे में विधु बेहोश पड़ी है। पास ही सुबह का अखबार पड़ा है। फ्रंट पेज पर बड़े-बड़े अक्षर चमक रहे थे—युवक इंजीनियर की दर्दनाक मृत्यु!

डॉक्टर दंपति भी मेरे साथ ही दौड़कर वरामदे में पहुंचे थे। हम लोगों ने मिलकर उसे उठाया। विस्तर पर लाकर लिटाया। डॉक्टर साहब ने स्मेलिंग साल्ट वगैरह लाकर उसे सुंघाया। कुछ ही देर में उसने आंखें खोलीं। मेरे जी का बोझ कुछ हल्का हुआ। ‘मैंने उन्हें मार डाला! मैंने उन्हें मार डाला!’ अस्पष्ट स्वर में वह बुदबुदा रही थी।

‘कुछ कह रही है शायद।’ मिसेज मित्रा ने समझने की चेष्टा करते हुए कहा।

‘उसे शाँक-सा लग गया है न। कल रात पंखे को देखकर भी ऐसे ही डर गयी थी।’ मैंने जल्दी से कहा, ‘अब तो मेरे खयाल से ठीक है। आइए न, बाहर बैठें। मैं चाय बनाकर लाती हूं।’

‘जी नहीं, अब तो चलेंगे। हॉस्पिटल के लिए तैयार भी होना है। वैसे

धवराने की कोई जरूरत नहीं है।'

अस्पताल जाने से पहले वे फिर एक बार आकर देख गये। वह ठीक हो चली थी, पर ऐसी निस्तेज दिखाई दे रही थी, मानां महीनों से बीमार हो। नौ बजे के करीब मैं जबरदस्ती उमे थोड़ा-सा दूध और ब्रेड दे पायी।

'मम्मी, जरा अखबार देना।' उसने यके स्वर में कहा।

'देखती हूं, बेटे। सुबह डुइबड़ाहट में पता नहीं बहा रखा गया है।' मैंने कह दिया। अखबार इस समय तक राख हो चुका था। मैं नहीं चाहती थी कि गुडिया उसे दोबारा पढ़े। लाश की फोटो उममें नहीं दी गयी थी। पर सदाददाता ने ऐसा हृदयद्रावक वर्णन किया था कि पढ़ते हुए मेरा भी कलेजा काप गया था। वहा तो सब देखकर मैंने आखें बंद कर ली थी, परंतु पेपर में जैसा वर्णन था, उन सारी बातों को जैसे मैं फिर से जी गयी थी।

'मम्मी!'

'क्या है, बेटे?'

'उस दिन उन्हें घर में नहीं बुलाती, तो कितना अच्छा होता न।'

'बार-बार उन बातों को दोहराने से कोई लाभ है, बेटा?'

'मैं क्या करू, मेरे मन से यह बात निकलती ही नहीं कि मैं उनकी मृत्यु का कारण हू। मैं उन्हें मौत के दरवाजे तक ढकेल आयी थी। सचमुच मैंने उन्हें मार डाला।' उममें तकिये पर सिर पटकते हुए आर्त स्वर में कहा।

मैं परेशान हो उठी। किसी तरह स्वर को समत करके कहा, 'देखो बेटे! मौत जब आती है, तो अपने आप बहाना ढूँढ लेती है। तुम इस ऊटपटांग खयाल को दिल से निकास दो...'

और फिर सबके सामने यू अपने मन की बात कही थोड़े ही जाती हैं। लोग कुछ भी सोच सकते हैं!'

'क्या सोचेंगे?'

अब इस बात का जवाब मेरे पास क्या था? मैं चुपचाप उठकर कमरे की चीजें करीने से रखने का नाटक करने लगी। मेटल-पीस पर रखी हुई साई बाबा की मूर्ति को हाथ में लेते ही मैंने अनायास गुडिया की ओर देखा, वह अपलक मूर्ति को निहार रही थी। उसकी आखों में पता नहीं क्या-क्या तिर आया था, जो व्यक्ति परसों दुनिया का सबसे कुत्सित प्राणी था, मरने

के बाद फिर से अपने पुराने रूप में याद आ रहा था ।

वह मूर्ति पिछले साल गंगाधर ही लाया था । वे दोनों मियां-बीबी शिरडी गये हुए थे । लौटते हुए विधु के लिए यह मूर्ति लाए थे । उसने उसे वेडरूम में ही रख छोड़ा था, ताकि सुबह पहले उन्हीं के दर्शन हों ।

पता नहीं, मुझे क्या हुआ । मैंने मूर्ति उठाकर सेफ में बंद कर दी । गुड़िया ने कुछ ऐसी दृष्टि से मुझे देखा कि मैं स्वयं को अपराधी अनुभव करने लगी । मुझे लगा कि जब तक वह गंगाधर के स्नेहमय रूप को याद करती रहेगी, स्वयं को इसी तरह उसकी मृत्यु के लिए उत्तरदायी गिनती रहेगी ।

इस स्थिति से उसे उबारने के लिए मैंने जैसे अपने आपसे कहा, 'मरने वाले की बुराई नहीं करनी चाहिए । लेकिन अच्छा ही हुआ, जो अपनी मौत चला गया नहीं तो... नहीं तो शायद मुझे यह काम करना पड़ता ।'

मैंने विलकुल भूठ भी नहीं कहा था । उस दिन सचमुच इतना ही क्रोध आ गया था मुझे । पर उसकी मृत्यु के तीन दिन बाद यह कथन बड़ा वेसुरा लग रहा था । मैंने स्पष्ट देखा कि विधु ने घृणा से मुंह फेर लिया और तकिये में मुंह छिपाकर चुपचाप रोती रही । उसे सांत्वना दे सकूं, इतना भी साहस तब न रहा ।

शाम तक उसकी कई सहेलियां आकर हालचाल पूछ गयीं । हर बार मुझे डर लगता रहा कि यह कहीं ऊलजलूल न बक दे । खासकर लता जब आयी, तो मैं वहीं जमकर बैठी रही । लता उसकी सबसे अंतरंग सखी थी । लता से ज्यादा खतरा मुझे उसकी मां से था । चलती-फिरती सूचना-केंद्र थी । उसके कानों तक बात पहुंचने भर की देर थी । चौबीस घंटे के अंदर-अंदर विधु का नाम शहर में मशहूर हो जाता ।

जितनी देर लता बैठी रही, गुड़िया ने एक बार भी मुंह नहीं खोला । बस, आंख बंद किये चुपचाप लेटी रही । वह उसके सिर पर हाथ फेरती रही । तीन-चार दिन तो यह क्रम चला, फिर वह भी बोर हो गयी । आखिर थी तो बच्ची ही । चौथे दिन जब मैं उसे छोड़ने बाहर तक गयी, तो बोली, 'क्या बात है आंटी, विधु तो एकदम गुमसुम-सी हो गयी है ? तबीयत तो अब ठीक है न !'

‘घर में बैठे-बैठे ऊटपटांग बातें सोचा करती है न। तुम लोग कोई पिकचर का प्रोग्राम क्यों नहीं बनाती ? परीक्षा के बाद एक देखने की बात थी न।’ मैंने मुझाया।

‘थी तो, पर हम लोगों ने सोचा—“कल चने जायेंगे।’

उसके साथ सिनेमा का प्रोग्राम तय करके मैंने गुड़िया को मूचना दी। पिकचर के नाम से हमेशा उछल पड़ने वाली वह गंभीर बनी बैठी रही। ‘मैंने उन लोगों से वादा कर लिया है, गुड़िया !’

‘ठीक है, चली जाऊंगी। लेकिन अकेले नहीं, तुम भी साथ चलांगी।’ उसने ठंडे स्वर में कहा।

‘मैं ! मैं लड़कियों के बीच अच्छी लगूंगी क्या ? और फिर मेरा फिलहाल पिकचर जाना वैसे भी शोभा नहीं देगा।’

‘और मुझे शोभा देता है ?’ उसने तीखी दृष्टि से मुझे वीधते हुए कहा।

बात वहीं समाप्त हो गयी। किसी तरह उसकी महेलियों को समझाया जा सका। धीरे-धीरे उन लोगों का आना भी कम हो गया। करीब-करीब सभी छुट्टियों में बाहर जा रही थी। मेरी भी छुट्टिया समाप्त हो रही थी। मूने घर में उसे अकेले छोड़ते न बनता था।

ऐसे में विन्नी (विनीता, मेरी ननद) मुझे देवदून की तरह लगी। गुड़िया की बीमारी की खबर सुनकर दिल्ली में दौड़ी चली आयी थी। अपनी लाइली बुई को देखते ही उसके चेहरे पर चमक आ गयी थी। विन्नी के साथ मैं पराग-निहार भी थे ही। मैंने सोचा—चलो, अब इसे सोचने के लिए खाली वक्त नहीं रहेगा।

लेकिन मैंने देखा कि अनजाने ही मेरा सोच बढ़ गया था। हफ्तर में टाइप करती उंगलिया एकाएक रुक जातीं। मोचती, गुड़िया ने विन्नी के सामने सब-कुछ उमल न दिया हो। कई बार छुट्टी लेकर जल्दी लौट भी आती। विन्नी की ओर देखकर टोह लेती कि वह कितना जान गयी है। पर कुछ पता न चलता।

उस दिन गंगाधर के यहाँ जाने की बात चली। विन्नी का जाना जरूरी था, पर गुड़िया भी ज़िद पर आ गयी।

‘कितनी बार कहा है तुमसे, ऐसी जगह बच्चे नहीं जाया करते। तुम



घर पर पराग, निहार को देखना । हम लोग घंटे भर में लौट आयेंगे ।’

वह मुझे घूरती हुई दूसरे कमरे में चली गयी । इन दिनों मुझे देखने का एक खास ढंग उसने अपना लिया था । कभी-कभी तो उस दृष्टि से दहशत-सी होने लगती थी ।

‘भाभी ! तुम अभी तक उसे छोटे बच्चों की तरह झिड़क देती हो, अच्छा नहीं लगता ।’ रास्ते में विन्नी ने कहा, ‘मैं हैरान हूँ । तुम एक बार भी उसे छाया से मिलाने नहीं ले गयीं । इस घर में और दूसरे घरों में क्या कोई फर्क ही नहीं है । कम-से-कम बच्चों को एकाध दिन घर ले आतीं अपने ।’

क्या कहती मैं ! चुप बनी रही । लौटते वक्त छाया के दोनों बच्चे भी साथ थे । बेचारे बच्चे, वहां सहमे-सहमे घूम रहे थे । यहां आते ही खिल गये । चारों-पांचों ने मिलकर घर सिर पर उठा लिया । जब तक सो नहीं गये, मस्ती करते रहे ।

रात में मैं रसोई धो रही थी । विन्नी और गुड़िया बिस्तर लगा रही थीं । चारों शैतान ड्राइंगरूम में कहीं कालीन पर, कहीं सोफे पर लुढ़क गये । एक-एक कर उन लोगों को लाकर सुलाया गया ।

‘बुई ?’

‘हां, बेटे !’

‘तरुण-तृप्ति कितने छोटे हैं न !’

‘हां, बेचारे इतनी-सी उम्र में बाप की छाया खो बैठे ।’

‘बुई, क्या ये बड़े होने पर चाचा को याद रख पायेंगे ?’

‘नहीं । और एक तरह से अच्छा ही है, गुड़िया । हम बड़े भूल नहीं पाते, इसी से तो दुनिया में इतने सारे दुःख हैं ।’

‘यही तो, इन बच्चों को देखकर तो और भी दुःख होता है । इतनी-सी उम्र में अनाथ हो गये बेचारे, मेरी तरह ।’

‘ऐसा नहीं कहते, बिटिया !’

‘सच कहती हूँ बुई, कभी-कभी ऐसा सोच हो आता है ।’

‘गुड़िया ss !’

मेरी आवाज़ उनकी मद्धम आवाज़ों को चीरकर वेडरूम तक पहुंची ।

रमोई में सिर्फ मेरे हाथ काम कर रहे थे। सारा ध्यान तो केन्द्रित था बाहर की ओर। मुझे गर्व हो रहा था कि ठीक समय पर मैंने मंभापण का मूत्र तोड़ दिया है।

‘क्या है?’ उसकी सूखी-सी आवाज मन को कंपा गयी, फिर भी मैंने हंसने का यत्न करते हुए कहा, ‘जरा डॉक्टर आंटी के यहाँ से दही तो ले आ, बेंटी। थोड़ा-सा दूध बच गया है, जमा दूगो।’

वह दरवाजे से हिली नहीं। मैंने कटोरी उसके आगे की। उसने लेकर शांति से वह चर्तनों के शेल्फ पर रख दी और फिर कमर पर हाथ रखकर बोली, ‘रात को दही न मागने का सिद्धांत तुम्हारा क्या हुआ?’

‘अरे, कभी मजबूरी में...’

‘कौसी मजबूरी है? यह घर में इतना दही है, नहाओगो क्या?’ उसने अलमारी खोलकर डोंगा मेरे सामने कर दिया। उसके धोलने का ढंग मुझे अच्छा नहीं लगा, फिर भी मैंने टालने के इरादे से कहा, ‘अरे, मुझे तो याद ही नहीं रहा। अच्छा, रहने दे। जा तू।’

पर गैस साफ करते हुए मैंने उसकी जलती हुई आँखों को अपनी पीठ पर स्पष्ट अनुभव किया। न चाहने पर भी आँखें उधर को उठ गयीं।

‘नुम इतनी भोली नहीं हो, मम्मी, जितना बनती हो।’ उसने किसी खलनायिका की तरह चबा-चबाकर कहा।

‘क्या बक रही है?’ मैंने गुस्से को जब्त करते हुए कहा।

‘किसी दिन तो कहने दो मुझे। तग आ गयी है तुम्हारी जामूसी से। तुम्हें क्या लगता है, मैं समझ नहीं पाती। कोई भी आता है मेरे पाग, तो तुम्हारे कान खड़े हो जाते हैं। मेरी टीचर आए तो, मेरी सहेलिया आए तो, यहाँ तक कि बुई के साथ भी मुझे घड़ी भर चैन नहीं लेने देती हो। गिट्ट की तरह मंडराया करती हो आसपास, क्यों?’

सटाक...

उसका आखिरी ‘क्यों’ मेरे चाटे की आवाज में दब गया। मारने के बाद लगा, जैसे मेरे पैरों में जान नहीं रह गयी है। मैं वहाँ गोले फर्ज पर घम्म से बैठ गयी।

तब तक बिन्नी दौड़कर आ चुकी थी और गुड़िया उसने लिपटा

रो रही थी। रोते हुए कहती जा रही थी, 'मैं इनसे नफरत करती हूँ। मैं इनसे नफरत करती हूँ।' विन्नी उसे सहारा देकर विस्तर पर ले गयी।

घंटे भर बाद जब वह लौटी, मैं उसी तरह घुटनों में सिर डाले गुमसुम बैठी थी।

'भाभी!' वह आते ही बरस पड़ी, 'यह तुम्हें क्या हो गया है! सयानी लड़की पर हाथ उठा देती हो। ऐसा व्यवहार मिल रहा है उसे, तभी तो उसे फिट्स आने लगे हैं। कहीं नाखून में भी रोग नहीं था। पिछले साल तक। इस तरह तो तुम उसकी जिंदगी तबाह कर दोगी। मैं कल ही उसे अपने साथ ले जाऊंगी। ऐसे तो वह लड़की यहाँ पागल हो जायेगी।'।

और सचमुच वह दूसरे दिन उसे अपने साथ ले गयी। सारा प्रोग्राम ऐसे तय हो गया, जैसे विन्नी ही उसकी मां हो। मुझसे पूछने की भी जरूरत नहीं समझी गयी।

स्कूल ट्रिप पर भी जाती, तो मुझसे लिपटकर रोनेवाली विधु! उसने मेरी ओर देखा तक नहीं। मैं बाज़ार से उसके लिए कपड़े खरीदकर लायी, मिठाइयों के डिब्बे, सैंडलें, बूंदे, चूड़ियां, ब्रोच—उसने किसी चीज़ की तरफ झांका भी नहीं। मैं स्टेशन भी गयी, आंखों में टीस उठने तक जाती हुई ट्रेन को देखती रही, पर किसी खिड़की से कोई रूमाल, कोई हाथ मेरे लिए नहीं हिला, कोई आंख मेरे लिए गीली नहीं हुई।

आठ-दस दिन बाद विन्नी का क्षमा-याचना वाला पत्र आया था। लिखा था, 'विधु के लिए वातावरण का बदलाव बहुत जरूरी था। तुम ऐसे तो उसे भेजती नहीं, इसलिए नाटक करना पड़ा।'।

शायद वह भूल गयी थी कि हर साल गर्मियों में दफ्तर से छुट्टी लेकर मैं उसे घुमा लाती थी। फिर भी मैंने ध्यान नहीं दिया। सोचा, परिवेश में बदलाव भी जरूरी है। शायद मुझसे दूर रहकर वह मेरे बारे में ठीक से सोच सके।

रिजल्ट आने तक मैंने बड़ी मुश्किल से सब्र किया। परीक्षाफल बहुत ही निराशाजनक था। मुश्किल से हायर सेकंड क्लास बन रहा था। आखिरी पेपर उसने लगभग कोरा ही दिया था। उसकी प्रिंसिपल बहुत दुःखी हुई थीं। हम दोनों ने एक-दूसरे को सांत्वना दी। मैंने कॉलेज का

फार्म भरा और उसे लेने दिल्ली पहुंची। मुझे लगा था, वह मुझे देखते ही निपट जायेगी। पर देखा, उसकी आंखों का वह हिंसक भाव जरा भी सौम्य नहीं हो पाया है।

बिन्नी की सास, जिठानी, पति—सभी उसके नम्र और मधुर स्वभाव की प्रशंसा किये जा रहे थे। सुनकर मन गर्व में फूल भी रहा था। लग रहा था, काश इसका एक शतांश ही मेरे हिस्से में आता।

मौका देख ही रही थी कि उससे चलने के लिए बात करूं कि उसने खुद ही मुझे छत पर आ घेरा।

‘क्यों आयी हो यहा?’ उसने उमी स्वर में पूछा, जो उसने सिकं मेरे लिए सुरक्षित कर रखा था।

‘घर नहीं चलना है, गुड़िया?’ मैंने जबरदस्ती स्वर में मिठास घोलते हुए कहा, ‘मैंने तुम्हारा फार्म भर दिया है। जी० डी० मी० में जाओगी न। तुम्हारी सभी सहेलियां बहो जा रही हैं। सता, मीरा, अनुभा, आयेशा—सब।’

‘मेरी कोई सहेली नहीं है। मेरा कोई घर नहीं है। मुझे उस जैन में वापस नहीं जाना। बम।’ और वह किमी शेरनी की तरह गर्वोन्नत चाल से वहा से चली गयी।

घोर असमजस में पड़ी मैं देर तक छत पर टहनती रही। रात के खाने पर कुअरजी ने ही मेरी समस्या का समाधान किया। बोने, ‘भाभी, आपको जानकर खुशी होगी कि गुड़िया को इद्रप्रस्थ में दाखिला मिल गया है। मेरी एक दूर के रिश्ते की भाभी बहा हैं। उन्ही की कृपा से यह काम हुआ है। अब एम० ए० तक आपको चिंता नहीं करनी होगी।’

मेरे कहने-मुनने की कुछ गुंजाइश वहा थी ही नहीं। फिर भी उनका हंमता हुआ चेहरा देखकर मन में संदेह का ज्वार उठा। बिन्नी को एक तरफ ले जाकर कहा, ‘वहां का झमेला मोल ले रही है। जानती है, सद्गानी लडकी आग की तरह होती है। इसे संभालना बड़ी जिम्मेदारी का काम है।’

‘तभी तो तुमसे बिना पूछे वहा दाखिला कर लिया, तुम तो दिन भर रहती हो दफ्तर में। अकेली लडकी घर में रहेगी, तो डर ही रहने।’

रो रही थी। रोते हुए कहती जा रही थी, 'मैं इनसे नफरत करती हूँ। मैं इनसे नफरत करती हूँ।' विन्नी उसे सहारा देकर विस्तर पर ले गयी।

घंटे भर बाद जब वह लौटी, मैं उसी तरह घुटनों में सिर डाले गुमसुम बैठी थी।

'भाभी!' वह आते ही बरस पड़ी, 'यह तुम्हें क्या हो गया है! सयानी लड़की पर हाथ उठा देती हो। ऐसा व्यवहार मिल रहा है उसे, तभी तो उसे फिट्स आने लगे हैं। कहीं नाखून में भी रोग नहीं था, पिछले साल तक। इस तरह तो तुम उसकी जिंदगी तबाह कर दोगी। मैं कल ही उसे अपने साथ ले जाऊंगी। ऐसे तो वह लड़की यहां पागल हो जायेगी।'

और सचमुच वह दूसरे दिन उसे अपने साथ ले गयी। सारा प्रोग्राम ऐसे तय हो गया, जैसे विन्नी ही उसकी मां हो। मुझसे पूछने की भी जरूरत नहीं समझी गयी।

स्कूल ट्रिप पर भी जाती, तो मुझसे लिपटकर रोनेवाली विधु! उसने मेरी ओर देखा तक नहीं। मैं बाज़ार से उसके लिए कपड़े खरीदकर लायी, मिठाइयों के डिब्बे, सैंडलें, बूंदे, चूड़ियां, ब्रोच—उसने किसी चीज़ की तरफ झांका भी नहीं। मैं स्टेशन भी गयी, आंखों में टीस उठने तक जाती हुई ट्रेन को देखती रही, पर किसी खिड़की से कोई रूमाल, कोई हाथ मेरे लिए नहीं हिला, कोई आंख मेरे लिए गीली नहीं हुई।

आठ-दस दिन बाद विन्नी का क्षमा-याचना वाला पत्र आया था। लिखा था, 'विधु के लिए वातावरण का बदलाव बहुत जरूरी था। तुम ऐसे तो उसे भेजती नहीं, इसलिए नाटक करना पड़ा।'

शायद वह भूल गयी थी कि हर साल गर्मियों में दफ्तर से छुट्टी लेकर मैं उसे घुमा लाती थी। फिर भी मैंने ध्यान नहीं दिया। सोचा, परिवेश में बदलाव भी जरूरी है। शायद मुझसे दूर रहकर वह मेरे बारे में ठीक से सोच सके।

रिजल्ट आने तक मैंने बड़ी मुश्किल से सब्र किया। परीक्षाफल बहुत ही निराशाजनक था। मुश्किल से हायर सेकंड क्लास बन रहा था। आखिरी पेपर उसने लगभग कोरा ही दिया था। उसकी प्रिंसिपल बहुत दुःखी हुई थीं। हम दोनों ने एक-दूसरे को सांत्वना दी। मैंने कॉलेज का

फार्म भरा और उसे लेने दिल्ली पहुंची। मुझे लगा था, वह मुझे देखने ही लिपट जायेगी। पर देखा, उसकी आँखों का वह हिंसक भाव जरा भी सौम्य नहीं हो पाया है।

बिन्नी की सास, जिठानी, पति—सभी उसके नम्र और मधुर स्वभाव की प्रशंसा किये जा रहे थे। मुनकर मन गर्व से फूल भी रहा था। लग रहा था, काश इसका एक शतांश ही मेरे हिस्से में आता।

मौका देख ही रही थी कि उसने चलने के लिए बात कह कि उसने खुद ही मुझे छत पर आ घेरा।

‘क्यों आयी हो यहाँ?’ उसने उसी स्वर में पूछा, जो उसने सिकं मेरे लिए मुरझित कर रखा था।

‘घर नहीं चलता है, गुड़िया?’ मैंने जबरदस्ती स्वर में मिठास घोलते हुए कहा, ‘मैंने तुम्हारा फार्म भर दिया है। जी० डी० सी० में जाओगी न। तुम्हारी सभी सहेलियाँ वही जा रही हैं। सता, मीरा, अनुभा, आयेना—सब।’

‘मेरी कोई सहेली नहीं है। मेरा कोई घर नहीं है। मुझे उम जेल में वापस नहीं जाना। बस।’ और वह किमी शेरेनी की तरह गर्वोन्नत चाल से वहाँ से चली गयी।

घोर असमंजस में पड़ी मैं देर तक छत पर टहलती रही। रात के खाने पर कुंजरजी ने ही मेरी समस्या का समाधान किया। बोने, ‘भाभी, आपको जानकर खुशी होगी कि गुड़िया की इंद्रप्रस्थ में दाखिला मिल गया है। मेरी एक दूर के रिश्ते की भाभी वहाँ हैं। उन्हीं की कृपा से यह काम हुआ है। अब एम० ए० तक आपको पढ़ा नहीं करना होगी।’

मेरे कहने-मुनने की कुछ गुंजाइश वहाँ थी ही नहीं। फिर भी उनका हंसता हुआ चेहरा देखकर मन में संदेह का ज्वार उठा। बिन्नी को एक तरफ ले जाकर कहा, ‘कहाँ का झमेला मोल ले रही है। जानती है, सपानी लड़की आम की तरह होती है। इसे संभालना बड़ी जिम्मेदारी का काम है।’

‘तभी तो तुमसे बिना पूछे यहाँ दाखिला करा लिया, तुम तो दिन भर रहती हो दफ्तर में। अकेली लड़की घर में रहेगी, तो डर ही रहता है।’

यहां तो मैं हूं, अम्मा हैं, भाभीजी हैं।'।

इस दलील का मेरे पास कोई जवाब नहीं था। जैसे गयी थी, वैसे ही लौट आयी मैं। जाते समय मन में उत्साह था, लौटते हुए निराशा। उस निराशा भरी मानसिक अवस्था में घर और भी सूना लग उठा।

शाम को डॉक्टर साहब के चीकू ने पूछा, 'दीदी नहीं आयी, आंटी !' जवाब देते-देते मैं एकदम रो ही पड़ी।

उस रात डॉक्टर दंपति देर तक बैठे मुझे समझाते रहे। अगले तीन-चार दिनों तक भी चाय-नाश्ता वहीं से आता रहा। आखिरकार मुझे ही शर्म आने लगी। सारी उदासी एक ओर फेंककर मैं नये सिरे से अपनी दिनचर्या में जुट गयी। पिछले दो-तीन महीने में स्वप्नावस्था ही में जी रही थी। सोते-बैठते मेरा मन गुड़िया में ही लगा रहता था। अब मन उतना बिखरा-बिखरा नहीं रहा। एक बार मनुष्य निश्चय कर ले, तो सब-कुछ सहज हो जाता है। मैंने सारा संचित दुलार चीकू पर उंडेलना प्रारंभ किया। बड़ा प्यारा बच्चा था। गैलरी में खड़े होकर मेरे दफ्तर से लौटने की राह देखा करता। उसके लिए आते हुए रोज़ मैं फल, बिस्कुट, खिलौने, टॉफी—कुछ-न-कुछ लेकर ही आती। उसके मां-बाप बहुत नाराज होते। पर मुझसे खाली हाथ घर आया नहीं जाता।

दीवाली की छुट्टियों में विधु की प्रतीक्षा थी। पर एक महीना पहले ही विन्नी ने लिखा कि उसके कॉलेज की ट्रिप गोआ जा रही है। अगर मैं कह दूं, तो अच्छा रहेगा। क्योंकि इतने कम पैसों में इतनी दूर जाने का सुयोग फिर नहीं जुटेगा।

मैंने चुपचाप पैसे भेज दिये। हैरत की बात तो यह कि इस अपेक्षाभंग पर मुझे जरा भी आश्चर्य या दुःख नहीं हुआ। जैसे मुझे इस बात का पहले ही से अनुमान था। यूँ दीवाली से पहले-पहले सारी ट्रिपें लौट आया करती हैं, पर विन्नी वगैरह को असमंजस से बचाने के लिए मैंने लिख दिया कि मैं भी दीवाली भैया के यहां की कर रही हूं और अम्मा से मिलने चली गयी।

क्रिसमस की छुट्टियों में विन्नी खुद उसे लेकर आयी। इन छह

महीनों में वह एकदम वही-सी लग उठी थी। दिल्ली की गतिश उसकी बोलचाल में, रहन-सहन में आ गयी थी। वह निश्चय ही पहले से अधिक मुदर हो गयी थी। पर साथ ही यह लगता रहा कि यह मेरी गुड़िया नहीं है, बिन्नी की लड़की है। तगा कि बाज़ार से अपनी पसंद की चीज़ नाकर उसे पहनाने का अधिकार मेरा नहीं रहा।

जाते हुए बिन्नी की तरह उसके हाथों पर भी मैंने रुपये रख दिये थे।

वह दस-बारह दिन रही, पर एक दिन भी हम लोग निकट नहीं आ सके। वह ओर मैं, दोनों ही अकेले-अकेले सामने पड़ने से कतराते रहे। जाने से पहले एक दिन मैंने ही हिम्मत करके कहा था, 'विधु ! गर्मी की छुट्टियों का क्या प्रोग्राम है ?'

वह सिर्फ मुझे बूरती रह गयी थी।

'क्या दिल्ली ही में बनी रहोगी ? कम-से-कम छुट्टियों में तो बाहर जाया करो। यहां न आना चाहो, तो नागपुर चली जाना, मामाजी के पास। नहीं तो किसी दिन बिन्नी के घरवाले खोर हो जायेंगे।'

वह कुछ सोचकर बोली, 'ठीक है, मामाजी के पास चली जाऊंगी। पर एक शर्त है, तुम नहीं जाओगी मेरे साथ।' यह बात कहते-कहते उसकी आंखों में वैसा ही हिंसक भाव तैर आया था। उसकी इन आंखों से मुझे डर-सा लगने लगा था। कई बार लगा, इसे किसी मनश्चिकित्सक के पास ले जाऊं। दिल्ली में थी तो एक बार बिन्नी से दबी जवान से चर्चा भी की। लेकिन वह मुझ पर बरम पड़ी थी, 'भाभी, उसे कुछ नहीं हुआ है। वह सिर्फ तुमसे नाराज है। इसका कारण जो भी रहा है, पर वह एकदम नॉर्मल लड़की है। ऐसी-वैसी जगह उसे दिखाती फिरी, तो कल को ज़रूर पागल हो जायेगी। किसी की मनक भी पड़ गयी, तो कल कां शादी होनी मुश्किल हो जायेगी।'

शायद बिन्नी ठीक ही कहती थी। इन दिनों मुझे छोड़कर शायद सभी ठीक थे। लेकिन मेरी हर बात काटी जाती थी। विधु का हित-अहित जैसे मुझसे ज्यादा ये लोग समझते थे।

मुझसे तो खैर, वह नाराज थी ही, पर छुट्टियों में न वह अपनी



सहेलियों से मिली, न स्कूल में मिलने गयी, न पड़ोसियों के निमंत्रण स्वीकार किये ।

उसकी प्रिंसिपल को तो खैर, मैंने समझा दिया कि रिजल्ट खराब होने की वजह से वह आपके सामने नहीं आ रही, पर और लोगों की राय को मैं नहीं बदल सकी कि दिल्ली जाकर विधुमुखी बदल गयी है, घमंडी हो गयी है ।

उन लोगों के जाने के बाद की बात है । रविवार की सुबह मैं डॉक्टर साहब के यहां बैठे हुई थी । यूँ तो मेरा अधिकतर समय वहीं बीतता था, पर उस रोज़ डोसा-इडली का प्रोग्राम था । मैं विशेष रूप से निमंत्रित थी ।

बातों के दौरान डॉक्टर साहब बोले, 'इस बार विधु कब आयी, कब चली गयी, पता ही नहीं चला । नहीं तो इन दोनों घरों में उसकी वजह से काफी रौनक हुआ करती थी ।'

'मैं तो खुद हैरान हूँ । पता नहीं एकदम कैसी तो हो गयी है । कहां तो सहेलियों के बिना एक पल चैन नहीं आता था उसे और अब इतने दिनों बाद आयी भी, तो न तो किसी के घर गयी, न घर आयी लड़कियों से ढंग से बात ही की । चिट्ठी-विट्ठी लिखना तो दूर ही रहा, बस दिन भर बुई और उसके बच्चे ! यही उसकी दुनिया हो गयी है ।' मैंने कहा ।

'लगता है, फर्स्ट क्लास खोने की बात को उसने जरूरत से ज्यादा महत्व दे दिया है ।'

'लेकिन डॉक्टर साहब, यह कोई इतनी बड़ी बात तो....'

'भाभी, आप नहीं समझेंगी । यह किशोर मनोविज्ञान बड़ा अजीब होता है । कौन-सी बात उनके लिए बड़ी हो जायेगी, कहा नहीं जा सकता । उसके लिए तो अपना रिजल्ट हमेशा से महत्वपूर्ण रहा है । शर्म तो उसे अपने आप पर आ रही है । लेकिन अपने को बचाने के लिए सारा गुस्सा दूसरों पर निकाल रही है । एकाएक ठोकर लग जाने पर हम लोग सामनेवाले पर भड़क उठते हैं न ! वैसे ही ।'

डॉक्टर साहब की बात मन को भीतर तक छू गयी । मेरा व्यथित मन उनकी सांत्वना के लिए तड़प उठा । भरपूर कंठ से मैंने कहा, 'वह गोड़ी भी नॉर्मल हो सकती, तो मैं उसे समझाना चाहती थी कि यह ऐसी

बड़ी बात नहीं है। वह व्यर्थ ही अपना जी जला रही है। पर क्या करूं ? वह तो मुझमें भी विश्वास खो चुकी है। मुझसे ज्यादा उसे इन दिनों विन्नी पर विश्वास है।'

'यह भावुकता का एक दौर है, आप उस पर बहुत ज्यादा ध्यान न दें। सबसे ज्यादा तो वह आपसे जुड़ी हुई है। इसलिए आपके सामने सबसे ज्यादा अपराधी महसूस करती है। यह उदासीनता तो अपनी शर्म को छिपाने का एक बहाना भर है।'

कितना ठीक निदान किया था उन्होंने। कारण चाहे उन्हें अज्ञात रहा हो, पर मर्ज उन्होंने ठीक पकड़ लिया था।

'भार्मी ! मैंने कहा न, इस बात पर आपको ज्यादा नहीं सोचना है।' मेरी विचार-तंद्रा को तोड़ते हुए उन्होंने कहा। फिर पत्नी से बोले, 'आभा ! यह तुम्हारा कर्तव्य है। इन्हें अकेला बिलकुल मत छोड़ा करो। दिनभर पता नहीं क्या-क्या भोचनी रहती हैं ?'

मैंने अनजाने ही मिसेज मित्रा की ओर देखा, वे चुपचाप 'सर्व' करती रही। हमेशा की तरह पति की बातों का समर्थन उन्होंने नहीं किया। उनकी परिचित मुसकराहट भी चेहरे पर नहीं आयी। उनके व्यवहार में एक अव्यक्त ठंडापन था, जिसे केवल नारी ही समझ सकती है। और मुझे लगा कि यह परिवर्तन अचानक नहीं हुआ है। पिछले कुछ दिनों से धीरे-धीरे होता आ रहा है। चीकू भी अब ज्यादा देर मेरे पास बैठ नहीं पाता। कभी दूध पीने के बहाने, कभी नहाने या पढ़ने के बहाने मम्मी उसे बुला ले जाती, डॉक्टर साहब के व्यवहार में जरूर कोई फर्क नहीं आया। अक्सर निमंत्रण की पहल वे ही करते और शायद यही अनर्थ की जड़ थी।

शर्म से भर उठी मैं। मेरे छोटे भाई की उम्र के रहे होंगे बेचारे, पर अकेली औरत तो असुरक्षित होती है। उसके संबंध में इतनी ऊच-नीच कौन देखता है।

घर लौटने का यह एकमात्र आकर्षण समाप्त होने पर मैंने दफ्तर में अपने को काम से लाद लिया। आखें दुःख आती, उंगलियों के पीर-पीर दर्द कर उठते, पर मैं मशीन पर बैठी रहती। इसका एक लाभ यह भी होता

कि रात बिस्तर से पीठ लगते ही नींद आ जाती ।

एक दिन साहब ने पूछ ही लिया, 'क्या बात है, मिसेज नरेंद्र ? आजकल आपको घर भागने की जल्दी नहीं रहती !'

'जी, वेबी इन दिनों दिल्ली में है । वहीं पढ़ रही है । घर पर अकेले बैठना होता है, तो यहां बैठ लेती हूं ।' मैंने नम्रता से कहा ।

'दिल्ली पढ़ रही है ? बहुत अच्छा । बहुत बढ़िया शहर है ! देखना कुछ दिनों बाद यहां आना भी पसंद नहीं करेगी । मैं भी दिल्ली यूनिवर्सिटी का छात्र रहा हूं । दस साल आपके इस घटिया शहर में रहने के बाद भी, वहां की खुशनुमा यादें घुंघली नहीं हुई हैं ।'

बड़ी छोटी-सी बातचीत थी, पर उस अनीपचारिक बातचीत ने हम लोगों के बीच का अंतर एक मिलीमीटर तो कम-से-कम घटा ही दिया था । उस दिन उन्होंने मेरे लिए कॉफी मंगवायी । इसके बाद किसी दिन गाड़ी में लिफ्ट भी दी । किसी दिन बाजार में सामना हो जाने पर दुआ-सलाम के बाद कॉफी हाउस में आमंत्रित भी किया । शायद वे ईमानदारी से मेरा अकेलापन वांटना चाहते थे । शायद उनकी नियत उतनी साफ़ न भी हो, पर मुझे शिकायत का कभी मौका नहीं मिला ।

पर दफ्तर में सबकी दृष्टि में एक मौन उपालंभ उत्तर आया । जो आंखें पहले आदर से झुक जाती थीं, अब वेवाकी से मेरा पीछा करतीं । जब-जब केबिन से बुलावा आता, लगता जैसे मैं घूरती हुई आंखों का गाड़ ऑफ ऑनर लेती जा रही हूं ।

तब समय काटने के लिए मैं लायब्रेरी जाने लगी । सब ओर से कट-हर यूँ किताबों की दुनिया में खो जाना बड़ा प्यारा लगा । बड़ी कोफ़्त हुई के यह बात पहले क्यों न सूझी ।

वहीं लायब्रेरी में कोई दुर्लभ पुस्तक खोजते हुए एक दिन प्रोफेसर गुप्ता मिल गये । नरेंद्र के सहपाठी रह चुके थे । घर पर भी कभी आते रहे । वे मनुहार करके घर ले गये । मिसेज गुप्ता और वच्चे बड़े प्रेम से मले । मुझे जबरदस्ती खाने के लिए रोक लिया गया । लौटी, तो नये-राने लेखकों की दस-बारह पुस्तकें मेरे हाथ में थीं । प्रोफेसर साहब खुद र तक छोड़ गए थे ।

लेकिन यह स्नेह और आदर हर बार नहीं मिलता। चौथी बार जब मैं पुस्तकें तोड़ने लगी, तो गृहस्वामिनी बाहर भी नहीं आयी। वहीं रसोई में बैठी बच्चों पर चीखती रही।

अनुभव के कढ़वे घूट पीकर मैंने जान लिया कि मैं समस्त पत्नी-समाज के लिए खतरे का निशान बन गयी हूँ। तब मैंने पार्क का आश्रय लिया। एम. ए. समाजशास्त्र का फार्म भरकर इतने दिनों की छुट्टी पढ़ाई फिर प्रारंभ कर दी। पार्क के एकांत कोने में बैठ देर तक पढ़ती रहती। मेरी तरह और भी कई लोग वहाँ पढ़ते होते। मेरी उपस्थिति किसी जिज्ञासा या कुतूहल को नहीं जगाती।

विधु को दिल्ली गये दो साल हो गये थे। इस बीच जब भी आयी, अपनी बुई के साथ ही आयी।

इसीलिए उस दिन घर लौटने पर सामने एकदम बिन्नी को देखा (अकेले ही), तो मैं चकित रह गयी।

‘अरे, कब आयी?’

‘दोपहर को।’

‘तो फोन क्यों नहीं कर दिया?’

‘मिनेज मित्रा बोली, तुम शायद दफ्तर में मिलोगी नहीं।’

मैंने ताला खोला। वह मेरे पीछे-पीछे घर में आयी।

‘जरा साड़ी बदल लू, बिन्नी। घम, एक मिनट में खाना तैयार करती हूँ।’

‘भाभी, मैंने पड़ोस में खा लिया है। मिनेज मित्रा बोली, तुम कई बार बाहर ही खा आती हो।’

‘तुम्हारे लिए तो बना ही देती।’ मैंने गुस्सा जस्त करते हुए कहा।

‘परीक्षा दे रही हो क्या?’ उसने मेरी पुस्तकें उलट-पलट करते हुए पूछा।

‘हा, क्यों, मिनेज मित्रा ने यह नहीं बताया क्या तुम्हें?’ मेरी आवाज कुछ ज्यादा ही तल्ख हो गयी थी।

मैंने गैस जलाकर कॉफी बनायी। एक कप उसे दिया, एक अपने

लिए भर लिया। अलमारी से ब्रेड निकाल ली और खाना शुरू कर दिया।

‘यह क्या, आज सिर्फ ब्रेड ही?’ विन्नी ने पूछा।

‘हां, जिस दिन बाहर नहीं खाती, घर पर इसी से पेट भर लेती हूं।’  
मैंने कहा और अपने स्वर की कटुता से खुद ही सहम गयी। थोड़ा-सा  
सौम्य होकर बोली, ‘बात यह है विन्नी कि अपने अकेले के लिए सारा  
सरंजाम करने की इच्छा नहीं होती। सुबह तो जैसे-तैसे बना भी लेती  
हूं। पर शाम को जरा भी इच्छा नहीं होती।’

विन्नी लेकिन वैसा ही आहत भाव चेहरे पर लिये बैठी रही।

रात विस्तर पर आते ही उसने कहा, ‘भाभी! तुम्हें शायद मिसेज  
मित्रा की बात का बुरा लग गया, पर तुम किसी के मुंह पर हाथ तो नहीं  
रख सकतीं न। और फिर उनका दोष ही क्या है? उनकी जगह तुम  
होतीं, तुम भी यही करतीं। क्योंकि कोई भी औरत इतनी दरियादिल नहीं  
हो सकती।’

मैं बेवकूफों की तरह सिर्फ उसे देखती रही। वह अपनी री में कहे  
जा रही थी, ‘हम लोग कोई महात्मा नहीं हैं, हाड़-मांस के मनुष्य हैं।  
इतनी बड़ी पहाड़-सी जिदगी अकेले काटना बड़ा कठिन होता है, यह  
क्या मैं जानती नहीं! लेकिन फिर भी औचित्य की सीमा लांघना तो  
ठीक नहीं है।’

‘आखिर तुम्हें कहना क्या है?’ मैंने खीझकर कहा। मुझे इतना  
गुस्सा आ रहा था। यह वित्ते भर की छोकरी, जिसे मैंने फ्रॉक और दो  
चोटी में देखा था, जिसका मैंने कन्यादान किया था, मुझे नीति और धर्म  
का पाठ पढ़ा रही थी।

‘मुझे जो कहना था, वह तो मैंने तब भी कहा था, जब भैया की मृत्यु  
हुई थी। आज कोई नई बात नहीं कहूंगी मैं।’

‘मैं नहीं सोचती, आज उस चर्चा की कोई जरूरत है।’ मैंने रुखाई  
से कहा।

विन्नी तनकर बैठ गयी, ‘जरूरत कैसे नहीं है! आज इस चर्चा की  
जितनी जरूरत है, पहले कभी नहीं थी। तुम्हें मालूम है कि विधु के  
अवचेतन में तुम्हारे कारण कैसी-कैसी ग्रंथियां पड़ गयी हैं। शायद

इसीलिए वह तुमसे इतनी नफरत करने लगी है ।’

‘वी० ए० मे मनोविज्ञान लेने से कोई मनोवैज्ञानिक नहीं हो जाता, विन्नी !’ मैंने व्यंग्य किया ।

‘यह बात मेरी है भी नहीं । यह बात दिल्ली के एक बड़े मनोविशेषज्ञ ने बतलायी है । भाभीजी विघ्न को लेकर वही गयी थी ।’

‘तुम्हारी जिठानीजी को मेरी बेटी में इतनी दिसचस्पी दिखाने की क्या जरूरत आ पड़ी !’

‘जरूरत तो सचमुच आ पड़ी है । दीपू गुड़िया पर जान दिये बैठा है और भाभीजी चाहती हैं कि उसे इंग्लैंड भेजने से पहले कम से कम मंगनी तो हो ही जाए । इसीलिए वे उसे डॉक्टरों के पास ले जाती रही हैं । और इसीलिए मैं तुम्हारे पास आयी हूँ । प्लीज भाभी, मना मत करना । इतना अच्छा लड़का फिर हाथ नहीं आयेगा ।’

‘लेकिन वह तो बहुत छोटी है अभी ।’ मैंने कापते स्वर में कहा ।

‘कहां छोटी है ! मुझसे भी एक हाथ लंबी निकल गयी है और इतनी प्यारी लगती है आजकल । दीपू उस पर मर-मिट्टा है, तो कोई आश्चर्य नहीं है । भाभीजी और अम्माजी भी उस पर जान छिड़कती हैं । वस, उसके फिट्स के बारे में जरा मन डावाडोल था, इसीलिए डॉक्टर के पास गयी थी ।’

‘क्या कहा है डॉक्टर ने ?’

‘वही कि मा को लेकर इसके मन में कुछ कॉम्प्लेक्स है, गाठ है—इसी से मां के सामने पड़ते ही यह अपना सतुलन खो बैठती है । भाभी, तुम नहीं जानतीं, तुमने अनजाने में उसके साथ कितना अन्याय किया है—वह तो यहा से मैं उसे ले गयी, तो अच्छा ही हुआ, नहीं तो लड़की सचमुच हाथ से निकल जाती ।’

‘तुम सोगो ने गलत समझा है, विन्नी । दरअसल बात यह है—’ भावावेश में कहते-कहते मैं एकाएक रुक गयी । यह क्या कहने जा रही थी मैं । यह ठीक है कि अब इतने दिनों बाद गंगाधरवाली बात बिलकुल धेमानी लग रही थी, लेकिन उस दिन तो वह मेरे लिए कितनी बड़ी दुर्घटना प्रतीत हुई थी, पहली बार सुनने पर विन्नी की क्या वही प्रतिक्रिया नहीं

होगी ? क्या उसकी कल्पना के ताने-बाने घटना को अतिरंजित रूप नहीं दे देंगे ? तब क्या इसी आग्रह के साथ वह गुड़िया को अपने घर की बहू बनाने पर राजी होगी ! हो भी गयी, तां क्या वही स्नेह, वही आदर दे सकेगी ?

अपनी गुड़िया के साथ कितना बड़ा अन्याय करने जा रही थी मैं । ईश्वर ने समय पर ही सुबुद्धि देकर मुझे उबार लिया था ।

'तू ठीक कह रही है विन्नी, अकेलापन कभी-कभी इतना असहनीय हो जाता है कि उचित-अनुचित कुछ भी याद नहीं रहता ।' मैंने तकिये में मुंह छिपाकर कहा । इतना बड़ा झूठ कैसे बोल सकी थी मैं ! पर बोलते हुए मन में जरा भी कसक नहीं उठी थी ।

मेरे उन उद्गारों के साथ ही विन्नी का रोप पता नहीं कहां बिला गया था । वह एकाएक मेरे ऊपर झुक आयी । एक साथ मेरी मां, मेरी सखी, मेरी ब्रिटिया बनकर मेरे शरीर पर हाथ फेरती रही । उसके स्नेहिल स्पर्श से मेरे इतने दिनों का संचित दर्द आंसू बनकर फूट पड़ा था और मैं रोते-रोते सो गयी थी ।

उसकी शादी में मैं नहीं जा पायी थी । उसे बधू वेश में देखने का अरमान मैंने मन-ही-मन में ज्वल कर लिया था । रिश्ते के देवर कन्यादान कर आये थे । तैयारी सारी विन्नी ने ही की थी । मैंने सिर्फ रुपया भेज दिया था । अपनी सारी संचित पूंजी मैंने लुटा दी थी । जीने का कोई अर्थ बाकी नहीं रहा था । फिर भी मैं मर नहीं सकी थी । एक आशा थी कि कल को गुड़िया मां बनेगी, अपने ही रक्त-मांस का एक पिंड उसकी गोद में खेलेगा, तब शायद वह जान सकेगी कि मां के लिए छोटे-छोटे भय भी कितने बड़े हो उठते हैं ! उस दिन उसे मेरी याद अवश्य आयेगी, तब अगर मुझे नहीं पायेगी, तो उसकी हंसी में हमेशा के लिए ग्रहण लग जायेगा ।

उस दिन की प्रतीक्षा में मुझे जीना था और इस प्रतीक्षा को सफल बनाने के लिए मैंने मिसेज कोहली बनना स्वीकार कर लिया था । अखबारी कागज़ पर चलकर यह रिश्ता मेरे पास आया था इसलिए इसने मेरा तन ही बांधा था, मन अब भी अतीत के गलियारों में भटक रहा था ।

मूरज की तीनी किरणों ने मुझे वर्तमानमे ला पटवा । मर्यादामागी वा प्रसिद्ध मूर्योदय में देख नहीं पायी थी, खुनी आंखों मे भी अंधी बनी रह गयी थी मैं ।

भागो-भागो मैं होटल की तरफ वापन आयी । मंकोच के गाय मैंने कमरे में प्रवेश किया । डॉ० कोहनी शिव कर रहे थे ।

‘कहा गायब हो गयी थी ? मैं तो पुनिव में रिपोर्ट देने आ रहा था ।’  
उन्होंने मजाक किया ।

‘मूर्योदय देखने गयी थी ।’

‘कैसा लगा ?’

‘कुछ छान नहीं । कम आपके साथ देखूंगी । शायद अच्छा लगे ।’ मैंने मृदु स्वर मे कहा ।

‘क्या इसे मैं अपनी तारीफ मानूं ?’

उन्होंने मेरी आंखों में सीधे देखते हुए कहा । पर दूसरे क्षण उनका चेहरा शरारत भरी मुसकराहट से दमक उठा और मैंने स्वस्ति की सांम ली ।

‘सुनो, चाय आकर लौट गयी है । नीचे जाकर चाय के लिए भी बट देना और कैंटीन से एक पैकेट सिगरेट का भी लेती आना ।’

चाय के लिए कहते हुए बंहेद मंकोच हुआ मुझे । बेचारे मेरे लिए अब तक रुके रहे । और सिगरेट लेते हुए तो मेरी ग्लानि की सीमा ही नहीं रही । पंद्रह दिन में मैं यह जान नहीं पायी थी कि डॉ० कोहनी कौन-सी श्रांठ पीते हैं ।

ऊपर पहुंची, तो चाय लग चुकी थी । डॉक्टर अखबार हान में मैंने मेरा इंतजार कर रहे थे ।

‘भारी !’ कहते हुए मैंने तत्परता से चाय बनायी और हन मंगे हुनि-  
जहान की बातों मे खो पये । मुझे मालूम था कि चाय के बाद वे सिगरेट तलब करेंगे । मैंने फुर्ती से उनका चादो का सिगरेटकेस निकाल पैकेट की सारी सिगरेटें उसमे डाल दी और पैकेट छिपा लिया । वे अहम-  
मे खोये हुए थे ।

सिगरेटकेस बन्द करते हुए मुझे लगा, मैंने ब्रह्म कुछ देखा है ।



द्वारा उसे खोला। ढक्कन के अंदर की तरफ एक तस्वीर थी। दो गुलाब के फूल मेरी तरफ देखकर हंस रहे थे। उनकी आंखें झील की तरह नीली थीं, शायद अपनी मां की तरह। पर बाकी सारे नाक-नकश हू-ब-हू अपना पिता की तरह थे।

मैंने अनायास ही उनकी तरफ देखा। अखबार एक ओर पड़ा था और उनकी आंखें दीवार पर लगे एक कैलेंडर में टंक गयी थीं। पर मैं समझ गयी थी कि उन आंखों में मंदुरा का मीनाक्षी मंदिर नहीं है। उन आंखों में उस वक्त टेक्सास के किसी नगर की छवि है। उस नगर का एक साफ सुथरा मुहल्ला, उस मुहल्ले में एक प्यारा-सा घर, उसमें एक अप्सरा-सदृश पत्नी, उस पत्नी की गोद में दो फूल-से बच्चे।

खट !

मैं चींकी। उन्होंने केस में से एक सिगरेट निकालकर उसे बंद किया था। वे बड़े सहज भाव से उसे सुलगा रहे थे। पर इस सहजता के पीछे कितना प्रयास था, मेरी पारदर्शी आंखों ने देख लिया था।

एकाएक उन पर मुझे ममता हो आयी। पुरुष होने का कितना बड़ा दंड भुगत रहे थे। वे मन भरकर रो भी नहीं सकते थे। एकाएक उनकी सारा दुःख वांट लेने की इच्छा हो आयी। व्यर्थ ही उनसे अपना दुःख छिपाती फिर रही थी मैं। वे भी तो मेरी तरह निर्वासन का दंड भुगत रहे थे। मेरी तरह अपने स्नेह के साम्राज्य से निष्कासित थे।

वैराजवचाय की ट्रे उठाकर ले गया तो मैं उठकर उनकी कुर्सी की बांह पर बैठ गयी। उनके बालों में धीरे से अपने होंठ छुआते हुए मैंने कहा, कल गुड़िया के बारे में पूछ रहे थे न ! सुनिएगा ?'

